

VISHVA-JYOTI

R. N. NO. 1/ 57

ISSN 0505-7523

CURRENCY PERIOD:

REGD. NO. PB-HSP-01
(1.1.2015 TO 31.12.2017)

६६, ८

नवम्बर, २०१७

विश्वज्योति



विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होशियारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
सुश्री स्नेहलता	पर्यावरण	कविता	२
सुश्री प्रोमिला भारद्वाज	स्मृति	कविता	३
डॉ. रामप्रकाश शर्मा	अथर्ववेद में निरूपित राष्ट्रीय भावना	लेख	४
डॉ. सुरेन्द्र पाल	प्रत्यभिज्ञादर्शन में पञ्चकृत्य की अवधारणा	लेख	११
डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी	आत्मनिर्माण से ही मानवनिर्माण सम्भव	लेख	१४
महात्मा चैतन्यमुनि	क्रोध विवेक का शत्रु है	लेख	१८
डॉ. अनु खुल्लर	वसुधैव कुटुम्बकम्	लेख	२४
श्री अनोखी लाल कोठारी	मध्यकाल में भक्ति-आन्दोलन का नेतृत्व : कबीरदास	लेख	२६
श्री वीरेन्द्र नाथ भार्गव	संत श्री लालदास	लेख	२९
डॉ. कृष्णमोहन पाण्डेय	धर्मशास्त्रों के निकष पर कालिदास के संस्कार	लेख	३१
श्री कमलाप्रसाद चौरसिया	इंसानियत	लेख	३६
श्री हरिगोपाल	आचार्य द्रोण का व्यक्तित्व	लेख	३८
सुश्री पूनम लता	भारतीय समाज एवं संस्कार	लेख	४०
श्री बब्बू राम	मालविकाग्निमित्रम् में गुरु-महिमा	लेख	४५
	संस्थान-समाचार		४८
	विविध-समाचार		५०
	पुण्य-पृष्ठ		५१-५२

संस्थापक-सम्पादक :
स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

उप-सम्पादक :
डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक-मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होशियारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होशियारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें					
आजीवन (भारत में)	:	₹ १२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	₹ ३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	₹ १०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	₹ ३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	₹ १० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	₹ ३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	₹ २५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	₹ ६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होशियारपुर-146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

पर्यावरण

—सुश्री स्नेहलता

युग-युग से सुनते थे
रहते थे वन में
अपने वे पुरखे सब
धरती माँ के आँगन में

सभ्यता की होड़ में
लगे हम दौड़ने।
नित नवीन वस्तुएं
लगे हम खोजने॥

एक पुष्प एक शिशु
एक भी परमाणु हम।
रच सके कब भला
रचे हों परमाणु बम॥

सूनी सी चट्टानें
वारि रहित सरिताएं
गुमसुम से झरने
सूखीं जल-धाराएँ

पर्ण कुटी बनती थीं
वल्लरियाँ तनती थीं।
वन कन्या वन-ज्योत्सना
साथ साथ पलती थीं॥

प्रमुदित मन सोचते
जीते ब्रह्माण्ड हम।
अवनी से अम्बर तक
नापे विस्तार तम॥

जब भी निर्माण किया
कुछ न कुछ उधार लिया।
वन, वारि, वायु, धरा
सब पर प्रहार किया॥

सूने से जंगल
पूछते हैं जैसे।
छीन लिए गहने
क्यों तुम हो ऐसे ?

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६६ } होशियारपुर, कार्तिक २०७४; नवम्बर २०१७ { संख्या ८

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्
परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

(यजु. ३४.४)

(इसी मनरूपी) अमृत (तत्त्व) ने भूत, भविष्य, वर्तमान और सब (संसार) को (परिगृहीतम्) धारण कर रखा है। (इसी मन के द्वारा ही) (सप्त होता) सात होताओं वाला (जीवनरूपी) यज्ञ (तायते) विस्तृत किया जा रहा है। (ऐसा ही) मेरा मन (है) वह (शिवसंकल्पमस्तु) अच्छे संकल्प वाला हो।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

अथर्ववेद में निरूपित राष्ट्रीय भावना

—डॉ. रामप्रकाश शर्मा

भारतीय साहित्य में सर्वोच्च ग्रन्थ रत्न हैं वेद। वेदों में न केवल भारतीय संस्कृति का विराट् स्वरूप मिलता है बल्कि ये समस्त लोक के कल्याणपथ प्रदर्शन करने में भी समर्थ हैं। यथार्थतः वेद धर्म, संस्कृति, ज्ञान, कर्म और उपासना के ही प्रतिपादक नहीं हैं अपितु वेदों में राष्ट्र धर्म और राष्ट्रीय प्रेम को प्रगाढ़ करने के शीर्ष आदर्श निर्देशित हैं। वेद मानवहित के साथ-साथ लोककल्याण का सन्देश भी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना के साथ मानवता को निरन्तर हस्तान्तरित करते आ रहे हैं। वेदचतुष्टय में समाहित ऋक्, यजु., साम., और अथर्व साहित्य जगत् की वो अक्षय निधि हैं जिसका इस संसार में कोई विकल्प नहीं। वेदों में राष्ट्रप्रेम और जगत् के अभ्युदय के वो मूल मन्त्र निहित हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। राष्ट्रीयभावना के सन्दर्भ में यदि विचार किया जाए तो अथर्ववेद से शीर्ष कोई शास्त्र नहीं है जिसमें मातृभूमि विषयक वर्णन उदारता के साथ किया गया है। वास्तव में राष्ट्रप्रेम और

मातृभूमि के प्रति कर्तव्यनिष्ठा का आदर्श ग्रन्थ है, अथर्ववेद।

राष्ट्रीय भावना का अर्थ है— अपने देश एवं राष्ट्र के प्रति प्रेम। अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम, वफादारी, आदर, भक्ति और चिन्तन करना ही राष्ट्रीय भावना है। अतः हम राष्ट्रवासियों को अपने देश एवं अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम रखना चाहिए। हम बड़े ही गौरवान्वित हैं कि हमें भारतीय साहित्य और दर्शन के माध्यम से राष्ट्रप्रेम की प्रेरणा सतत मिलती रही है। हमारे धर्मग्रन्थों और नानाविध भाषाओं के साहित्यों में राष्ट्रीयभावना से ओत-प्रोत प्रचुर उल्लेख प्राप्त होते हैं। समय-समय पर राष्ट्र के कवियों, दार्शनिकों, शिक्षकों और क्रान्तिकारियों ने राष्ट्रप्रेम की भावना को प्रबल करने के उद्देश्य से विचार व्यक्त किये। वस्तुतः राष्ट्र के प्रति प्रेम हम सद्भावना के द्वारा ही रख सकते हैं। राष्ट्रीय भावना एक प्रकार की अग्नि है। राष्ट्रीय भावना की इस अग्नि को सद्भावना रूपी घृत से सदा प्रज्वलित कर हमें अपने राष्ट्र की रक्षा

सुश्री स्नेहलता

जिनसे जो मांगा था
कुछ तो लौटाना था।
प्रकृति संतुलन हेतु
कोष भी सजाना था।।

छा जाए धरती पर
वृक्षों की हरियाली
अमवा की अमरैया
कोयलिया भी काली

समय है सोचो
वक्त को सहेजो।
जो कुछ भी मेरा है
मुझको वह दे दो।।

मन महके तन चहके
महुआ भी फूले।
धरती फिर मानव की
सहचरी हो झूले।।

-१/३०९, विकास नगर, लखनऊ। मोबा: नं. ९४५०६३९९७६

स्मृति

-सुश्री प्रोमिला भारद्वाज

विशाल सड़क बलखाती,
दूर होते हुए
दृष्टि से ओझल,
होते-होते संकीर्ण हो
बन जाए एक रेखा,
रेखा से बिन्दु
धूमल सा,
स्नेहिल सम्बन्धों सम
पास रह के पनपते,
महकते जो महकाते
राहत दें,
हवा के झोंकों जैसे
दूरियाँ समय के परों पे,

बिठा दूर ले जाएँ
अपनों को अपनों से,
दूर इतना दूर
ओझल हो विरह बन,
प्यार भरे सम्बन्ध
छोड़ जाएँ टीस,
बन जाएँ समृति
समृति से फिर,
एक तारा टिमटिमाए
हृदय पटल पर,
पैदा करे भ्राँति
वास्तविकता की, बिन्दु बनी
सड़क की भ्राँति।

-प्रबन्धक, जिला उद्योग केन्द्र, जिला मण्डी (हि०प्र०) १७५००१

अथर्ववेद में निरूपित राष्ट्रीय भावना

की भूमिका वैदिक वाङ्मय में सर्वोत्कृष्ट है। अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों में राष्ट्रीयता की सुगन्ध अनुभूत की जा सकती है। यथा- 'भूमि मेरी माता है और मैं मातृभूमि का पुत्र हूँ।' मातृभूमि का यह रुचिर वर्णन देशभक्ति की प्रेरणा का मधुर विलास है। इस राष्ट्र के निर्माण तथा संरक्षण में देवताओं का सहयोग विशेष रूप से जागरूक रहा है। अश्विनो ने जिसे मापा, विष्णु ने अपने तीन पादप्रक्षेपों को रखा, शक्ति के स्वामी (शचिपति) इन्द्र ने जिसे अपने लाभ के लिए शत्रुओं से विरहित बनाया, वह मातृभूमि मुझे जल, अन्न आदि नाना पुष्टिकारक पदार्थ दुग्ध के रूप में प्रदान करे जिस प्रकार माता अपने पुत्रों को स्वतः अनुराग से दूध देती है।^४

अपने राष्ट्र तथा देश के प्रति अथर्ववेद में विशेष रूप से प्रेम करने के लिए कहा गया है क्योंकि हमारे द्वारा किए जाने वाले शुभाशुभ कृत्यों का भार यह पृथ्वी ही वहन करती है अतः ऐसी इस मातृभूमि के लिए हमें सदैव कृतज्ञ भाव से स्नेह रखना चाहिए। यह इस मातृभूमि की महानता ही है कि इस पर न केवल मानव अपितु इस भूमि पर समुद्र बहने

वाले नल-नाले तथा नाना प्रकार के जल हैं, जिस पर विभिन्न प्रकार से कृषि होती है और इसके फलस्वरूप जीता जागता, चलता-फिरता संसार अन्न-जल खा-पीकर तृप्त होता हुआ प्राण को धारण करता है।^५

इस पृथ्वी के चारों ओर चार विशाल दिशाएँ पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दूर-दूर तक फैली हुई हैं। सेवा करने वाले परिचारकों के समान-समान भाव दिन और रात प्रमाद-शून्य होकर निरन्तर इस माता रूपी स्वामिनी की सेवा करते हैं।^६

सम्पूर्ण जगत् का भरण-पोषण करने वाली यह पृथ्वी सभी प्रकार के बहुमूल्य धन सम्पत्तियों का खजाना है। यह पृथ्वी सुवर्ण आदि धातुओं को अपनी कुक्षि में धारण करती है तथा सारे संसार को अपने ऊपर आश्रय देती है। अपनी रक्षा करने के निमित्त वह अग्नि जैसे तेजस्वी राजा का विशेष रूप से पालन-पोषण करती है। इस पृथ्वी की सदा सचेत राजा लोग बिना प्रमाद के सदा समस्त कालों में अपने प्रतिद्वन्दी शत्रुओं से रक्षा करते हैं।^७

अथर्ववेद में राष्ट्र-परिपालक राजा के द्वारा राष्ट्रप्रेम की भावना के सम्बन्ध में वर्णित है कि,

४. अथर्ववेद, १२/१/१२

५. वही, १२/१/४३

६. विश्वभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी। अ. वे. १२/१/६

७. यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानी देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्। अ. वे. १२/१/७

५. वही, १२/१/१०

७. अ. वे. १२/१/४

करनी चाहिए। जिस प्रकार अग्नि के प्रज्वलन से अन्धकार का नाश होता है और प्रकाश का प्रसार होता है उसी प्रकार राष्ट्र के प्रति सद्भावना रूपी ज्वाला को प्रज्वलित करने से राष्ट्र उन्नत होकर समृद्धि को प्राप्त करता है। इस सम्बन्ध में अथर्ववेद में अत्यन्त स्पष्ट और रोचक शब्दों में उल्लेख प्राप्त होते हैं। राष्ट्रीयभावना तथा राष्ट्रीय एकता के लिये यह आवश्यक है कि हमें कभी भी आपस में विरोध उत्पन्न करने वाली बातों को नहीं करना चाहिए।^१ इसके लिए आवश्यक है राष्ट्र में निवास करने वाले सभी मनुष्यों के मन, कर्म तथा विचार समान हों। जो असन्तुष्ट तथा विरोधी जन हैं उनको प्रेम से सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करना चाहिए—

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि।

अमि ये विव्रता स्थनतान्वः सं नमयामसि।^२

जिससे राष्ट्र के निवासियों में विरोध नहीं होगा तथा राष्ट्र समृद्धि को प्राप्त करेगा। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री स्व. पं. श्री जवाहर लाल नेहरू ने राष्ट्रीय भावना और एकता के विषय में लिखा है, 'हमें प्रान्तवादी, संकीर्ण, साम्प्रदायिक तथा जातिवादी नहीं बनना चाहिए, क्योंकि हमारे सामने बहुत बड़ा लक्ष्य

है। हमें गणतन्त्र भारत के नागरिकों को भारतीय लोगों में एकता स्थापित करनी है। हमें इस राष्ट्र को शक्तिशाली बनाना है— साधारण अर्थों में शक्तिशाली नहीं बल्कि विचार, कर्म, संस्कृति और मानवता की शान्तिपूर्ण सेवा की दृष्टि से इसे शक्तिशाली बनाना है।'

अपने राष्ट्र की रक्षा करने वाला सबसे योग्य व्यक्ति राष्ट्र का परिपालक राजा होता है। अथर्ववेद इस विषय में और भी स्पष्ट दृष्टिकोण के साथ अपने मत का प्रतिपादन करता है। इस वेद के अनुसार सूर्य जिस प्रकार उच्च-उच्च स्थान को क्रम से बढ़ता चला जाता है, उसी प्रकार उदय को प्राप्त हुआ राष्ट्र का पालन करने वाला राजा भी उच्च-उच्च स्थानों और अधिकारों को प्राप्त करे। माता के गर्भ में अंकुरित भ्रूण जिस प्रकार दिनों-दिन वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार राज्यशक्ति को अपने हाथ में ग्रहण करने में समर्थ राजा प्राणियों या प्रजाजनों के बीच उच्चतम स्थान को प्राप्त करे।^३ अर्थात् उन प्रजाजनों के प्रयत्नों से बनाए गये राष्ट्र को उनकी अनुकूलता से प्राप्त करता हुआ छहों विशाल दिशाओं पर विजय प्राप्त करके सम्पूर्ण राष्ट्र को अपने वशीभूत कर लेना चाहिए।

राष्ट्रभावना को उद्वेलित करने में अथर्ववेद

१. अथर्ववेद-३/८/३

२. वही, ३/४/५

३. वही, १३/१/४

प्रकार से मनुष्य को अपने ऊपर सुलाती है।^{१६}
आशय यह है कि सभी मनुष्य इस पृथ्वी पर
विश्राम करते हैं तथापि यह पृथ्वी सभी का
कल्याण करती है।

सा नो भूमिरादिशतु यद्धनं कामयामहे।

भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः।।^{१७}

यह पृथ्वी कामधेनु के समान सबका
कल्याण करने वाली है। इस पृथ्वी पर
अधिष्ठित मानव जिस धन एवं फल की
कामना करता है उसे सर्वोत्पादक भूमि हमें
प्रदान कर देती है। अर्थात् मनुष्य की सभी
कामनाएँ इस पृथ्वीरूपी धरा पर ही सम्पूरित
होती हैं। अतः ऐसे राष्ट्र की महिमा का
जितना अधिक वर्णन किया जाए वह न्यून
ही रहेगा। इस मातृभूमि पर अनेक समुदाय
के मरणधर्मा मनुष्य अनेक प्रकार की
भाषाओं को बोलते हुए परस्पर प्रेम के साथ
निवास करते हैं। ऐसा महान् राष्ट्र कभी भी
हमसे विच्युत होकर हमारे शत्रुओं को प्राप्त न
होवे-

सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा
पृथिवी कृणोतु।^{१८}

अतः ऐसे महान् समृद्धशाली, धनसम्पन्न
राष्ट्र की हमें सदैव रक्षा करनी चाहिए।

अपनी मातृभूमि के प्रति अपने अगाध प्रेम
के सम्बन्ध में वेद कहता है कि इस पृथ्वी पर
अनेक प्रकार की भाषाएँ बोलने वाले, विभिन्न
धर्मों को मानने वाले जनसमूह को उनके देश
और निवास स्थान के अनुसार पालन-पोषण
करने वाली यह पृथ्वी मुझे धन, ऐश्वर्य और
सम्पत्ति प्रदान करें- सहस्रं धारां द्रविणस्य मे
दुहां ध्रुवेव।^{१९} अपने भीतर बहुमूल्य पदार्थों
को धारण करने वाली यह पृथ्वी मुझे मणि-
सुवर्ण आदि बहुमूल्य धातु प्रदान करके
समृद्धशाली बनाए क्योंकि मैं इस मातृभूमि का
पुत्र हूँ और भूमि मेरी माता है। जिस प्रकार
माता अपने पुत्र का सदैव कल्याण चाहती है
उसी प्रकार यह भूमि भी अपने भीतर समाहित
अनेक प्रकार के बहुमूल्य पदार्थों को प्रदान
करके हमारा कल्याण करके हमें ऐश्वर्यवान्
बनाए।

अथर्ववेद के अनेक मंत्र राष्ट्रीयता के
पोषक और संवर्धन की उदारता के आदर्श
हैं। इन मंत्रों में मातृभूमि से अपने को अनिष्ट
पदार्थों से बचाने की प्रार्थना की गयी है।
पृथ्वी का बड़ा ही विशाल हृदय है यह अपने
इस विशाल हृदय में सभी प्रकार के जीव-
जन्तुओं को आश्रय देती है इसीलिए ऐसे

१६. उत्तानास्त्वां प्रतीची..... सर्वस्य प्रतिशीवरि। अ. वे. १२/१/३४

१७. अथर्ववेद, १२/१/४०

१८. वही, १२/१/४१

१९. वही, १२/१/४५

मैं किसी से पराजित न होकर किसी से न मारा जाकर, स्वस्थ रहकर, सदा सबका भरण-पोषण करने वाली, किसानों से जोती गई, नाना अन्न-वनस्पतियों से सम्पन्न, समस्त प्राणियों से सुरक्षित, स्थिर, सर्वोत्पादकता के गुण से युक्त वसुन्धरा पर अधितिष्ठित होकर शासन करते हुए सुख का भोग करूँ।^{१०} सभी प्रकार के धनों को अपनी गोद में धारण करने वाली, विविध औषधियों की धात्री, सदैव कल्याण करने वाली सुख प्रदान करने वाली, सभी को उत्पन्न करने वाली इस विशाल पृथ्वी पर हम सदा और सब प्रदेशों में विचरण करते हुए उस पर शासन करते रहें-

विश्वस्वमातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।^{११}

पृथ्वी की इस विशाल समृद्धि के विषय में अथर्ववेद कहता है कि यह राष्ट्र सभी प्राणियों के एकत्र होने का एक विशाल भवन है- महत् सधस्थं महती बभूविथ^{१२}। इस विशाल भवन पर द्विपद: जाति वाले पाँचों प्रकार के मनुष्य- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद तथा चतुष्पद: सभी प्राणी आश्रय पाते हैं और इन सब का पालन पोषण यह माता रूपी पृथ्वी करती है।^{१३} पृथिवी की महत्ता का

प्रतिपादन करते हुए कहा गया है-

भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधया त्रेन मर्त्याः।

सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु पृथिवी कृणोतु।^{१४}

अर्थात् मरणधर्मा मनुष्य लोग भूमि पर ही स्वधारूप अन्न से प्राण अर्थात् जीवन को धारण करते हैं अतः यह मातृभूमि हमें प्राण और आयु प्रदान करे और वृद्धावस्था तक दीर्घजीवी करे। इस विषय में इस वेद का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक और विस्तृत है। वेद वाक्य है कि मातृभूमि पर सभी मनुष्य उठते-बैठते, चलते-फिरते, दायें-बायें पैरों से दिन प्रतिदिन प्रहार करते हैं लेकिन फिर भी माँ के ममतामयी वात्सल्य से परिपूर्ण यह पृथिवी माँ हमें कभी कष्ट नहीं देती है।^{१५}

यह पृथ्वी अपने विशाल हृदय पर हमारे द्वारा किये जाने वाले विभिन्न प्रहारों को सहते हुए भी बलकारी, पुष्टकारी अन्न को हमारे पोषण के लिए प्रदान करती रहती है इसलिए इस पृथ्वी की हमें सदैव रक्षा करके इसे अपने वशीभूत करना चाहिए। जननी के समान सबका भरण-पोषण करने वाली यह मातृभूमि जिस प्रकार सभी मनुष्यों को अपनी विशाल गोद में रखकर पालन-पोषण करती है उसी

१०. अ. वे. १२/१/११

११. वही, १२/१/१७

१४. वही, १२/१/२२

१२. वही, १२/१/१८

१५. वही, १२/१/३४

१३. वही, १२/१/१५

अथर्ववेद में निरूपित राष्ट्रीय भावना

अपनी माता की रक्षा करना प्रत्येक पुत्र का परम धर्म है। इस माता का शरीर जल और मिट्टी से बना हुआ है क्योंकि सृष्टि का निर्माण करने वाले परमेश्वर ने सृष्टि के निमित्त उपयुक्त मानकर लोक निर्माण के लिए ही इस भूमि का चयन किया है। यह भूमि वस्तुतः भोग करने योग्य अन्नादि से सुसज्जित एक पात्र के समान है, जो अनेक प्रकार के अन्नो से परिपूर्ण है।^{१४} जो कोई मनुष्य इस पृथ्वी को अपनी माता मानता है ऐसे पुत्रों के उपभोगार्थ यह भूमि अपने समस्त अन्नादि पदार्थों को प्रदान कर देती है।

वेदों में विशेष रूप से अथर्ववेद में मातृभूमि पृथ्वी ने अपने विशाल स्वरूप का चित्रण विविध एवं विस्तृत रूप से किया है जिसका वर्णन जितना भी किया जाये वह कम ही होगा।^{१५} वास्तव में राष्ट्रप्रेम या राष्ट्र के प्रति कल्याण की भावना न केवल हमारे वैदिक

साहित्य में ही मुखरित हुई है अपितु आधुनिक साहित्य भी राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना से सराबोर है। भारतीय साहित्य जहां एक ओर जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी और वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे प्रेरणास्पद आदर्शों को लेकर आगे बढ़ा, वहीं दूसरी ओर साहित्य में राष्ट्रीयता के संकुचित अर्थ का भी प्रयोग किया जाने लगा। वस्तुतः जिस सार्थकता के साथ इस शब्द का प्रादुर्भाव जिस भावना के प्रदर्शन के लिए हुआ उसमें अब संकीर्णता की दुर्गन्ध आने लगी है। राष्ट्रीयता के संकीर्ण अर्थ को स्पष्ट करते हुए हिटलर कहता था कि जर्मन के लोग संसार पर राज्य करने के लिए पैदा हुए हैं। शेष सभी राष्ट्र उस से हीन हैं। वह यहूदी जाति का घोर विरोधी था। 'मेरा देश ही महान् है चाहे वह ठीक हो या गलत' यह धारणा हिटलर को पसंद थी और यही धारणा मानवता के विनाश का मूल कारण है।

-दधिमथी बी. एड. कॉलेज, श्री गंगानगर (राज.) मोबा: ०९८८७४-३१०५६

१४. भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविभोगे अभवन्मातृमदयः अथर्ववेद, १२/१/६०

१५. प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम्। अथर्ववेद, १२/१/५५

अनिष्टकारी जीवों से स्वयं को बचाने की प्रार्थना की गई है। वेद मन्त्र कहता है कि हे पृथ्वी! तेरी गोद में जो बिच्छू, सर्प आदि दाँतों से काटने वाले जीव हैं, जो हेमन्त काल के शीत से पीड़ित होने वाले भौरें हैं, जो गुफाओं के अन्दर खोहों में शयन करने वाले विविध कीड़े-मकौड़े हैं जो वर्षाकाल में वर्षा के जल से तृप्त होकर विचरण करते हैं। यह सभी प्रकार के जीवों हमारे समीप न आवें अर्थात् इन सभी प्रकार के जीव से मातृभूमि मेरी रक्षा करे^{२०} और हमें अपने सुखकारी पदार्थ प्रदान कर समृद्धशाली बनाये।

अथर्ववेद राष्ट्रीय-प्रेम और राष्ट्र-कल्याण की भावनाओं का अत्यन्त समृद्ध आगार है। इस ग्रन्थ में राष्ट्र के कल्याण के साथ-साथ आत्मकल्याण का प्रतिपादन भी विशिष्ट ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

राष्ट्र पर काली रात्रि का अन्धकार और लाल सूर्य का प्रकाश तथा दिन और रात परस्पर मिलकर सदा एक दूसरे का अनुगमन करते हुए सुसम्बद्ध रहते हैं।^{२१} तात्पर्य है कि रात और दिन भी इसी पृथ्वी पर आश्रय पाते हैं, यह विशाल पृथ्वी वर्षा के जल से ढकी हुई,

कल्याण और सुखप्रदायिनी लक्ष्मी से सम्पन्न यह भूमि प्रत्येक स्थान (देश) में हमें धारण करके हमारा कल्याण करे। यह सदा प्रसन्न रहने वाली है, क्योंकि सारी धन-सम्पत्तियाँ इस पृथ्वी पर ही फलती-फूलती हैं। जिससे यह सभी को प्रसन्न करने वाली है। सभी की उत्पत्ति होने के कारण यह भूमि सबसे आगे-आगे शीघ्रता से चलने वाली तथा समस्त उत्पन्न होने वाले पदार्थों की रक्षा करने वाली है। यथा-

**मन्दाग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां
गृभिरोषधीनाम्।।^{२२}**

अपनी मातृभूमि के प्रति अगाध प्रेम और राष्ट्रीय निष्ठा की अभिव्यंजना करते हुए अथर्ववेद में राष्ट्र के पालक और संचालक राजा कहते हैं कि-

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः।।^{२३}

अर्थात् हे मातृभूमि! तेरी गोद में आश्रय पाने वाला मैं जब भी बोलूँ तब मधु से भरा अमृतमयी वचन बोलूँ। जब भी तुझे देखूँ विनम्रता के भाव से ही देखूँ। कभी भी तेरे प्रति गर्वान्वित न होऊँ, बल्कि मैं स्वयं तेजस्वी और उत्साही होकर तेरे प्रति द्रोह करने वाले शत्रुओं से तेरी रक्षा करूँ।

२०. यस्ते सर्पो.....यच्छिवं तेन नो मृड। अथर्ववेद, १२/१४६
२१. वही, १२/१/५७

२२. अथर्ववेद, १२/१/५२

२३. वही, १२/१/५८

तब तक की सृष्टि को शुद्धाध्वा के अंतर्गत रखा जाता है। इसके आगे माया से पृथ्वीतत्त्व तक की सृष्टि को अशुद्धाध्वा के अन्तर्गत गिना जाता है। इन दोनों अध्वाओं (मार्गों) में कुल मिलाकर सृष्टि के छत्तीस तत्त्वों को गिना जाता है। अतः प्रत्यभिज्ञा दर्शन में सृष्टि के- शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर तथा शुद्धविद्या (शुद्ध सृष्टि के पांच तत्त्वों) और माया, कला, विद्या, राग, कल, नियति, पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियों (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण), पाँच कर्मेन्द्रियों (वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ), पाँच तन्मात्राओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध) तथा पञ्चभूतों (आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी)- छत्तीस तत्त्वों की गणना की जाती है। यह संख्या सांख्य-दर्शन के तत्त्वों से शिव से लेकर नियति तक मेल नहीं रखती क्योंकि सांख्य द्वारा इन ग्यारह तत्त्वों को माना ही नहीं गया। इसके अतिरिक्त सांख्य और प्रत्याभिज्ञा के पच्चीस तत्त्वों के नाम में समानता है। इस तरह सांख्य और प्रत्याभिज्ञा-दर्शन सृष्टि विषयक तत्त्वों में भेद और समानताएं पायी जाती हैं।

२. स्थिति- सृष्टि के अनंतर जगत् का ठहराव और नियमपूर्वक उसका पालन ही स्थिति है। प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार परमप्रमाता सृष्टि के

बाद सम्पूर्ण प्रमातृ- प्रमेय जगत् को नियति के नियमों में बाँध कर चलाते रहते हैं।^६ इस नियति शक्ति को परमेश्वर की स्थितिकारिणी शक्ति भी कहा जाता है।^७ इसी के कारण ही नील-पीत आदि प्रमेय अपने स्वरूप में स्थिति रहते हैं। इसी पारमेश्वरीय स्थितिशक्ति के कारण ही सब प्रमेयजगत् स्वस्वरूप में अवस्थित रहता है तथा सब वस्तुएं अपने-अपने स्वरूप में स्थित रहती हैं। इस पारमेश्वरीय शक्ति के बिना कोई भी तत्त्व या वस्तु अपने-अपने रूप में स्थिर नहीं रह सकती।

३. संहार- प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार पारमेश्वरीय पंचकृत्यों में तृतीय कृत्य है- संहारकृत्य। यहां संहार से अभिप्राय है- समेट लेना। जिसे पहले उत्पन्न किया था, उसे समेट लेना। इस प्रकार संहार से अभिप्राय है- पहले अपने अंदर से बाहर निकाली गई वस्तु को पुनः अपने भीतर ही समेट लेना। यहां यह भी कहा जा सकता है कि इस संहारकृत्य द्वारा परमेश्वर कार्यभूत प्रत्येक वस्तु को उसके अपने ही कारणरूप में बदल देते हैं। इस कृत्य के द्वारा परमशिव के स्वरूपभूत मायाक्षेत्र के अधिकारी अनंतनाथ, जिसका दूसरा नाम अघोरेश भी है, संहारकृत्य जिसे विलय और प्रलय नामों से भी जाना जाता है- को पूरा करते हैं।^८

४. तिरोधान- पञ्चकृत्यों में चतुर्थ है-

६. कश्मीरशैवदर्शनबृहत्कोष (द्वितीय भाग) पृ. ७३६

८. वही, ७३७

७. प्रमेय स्थितिरूपताकलनाकारिनिशक्तिरेषा, वही.

प्रत्यभिज्ञादर्शन में पञ्चकृत्य की अवधारणा

—डॉ. सुरेन्द्र पाल

प्रत्यभिज्ञादर्शन को काश्मीरीय शैव तथा अद्वैत शैवदर्शन आदि नामों से भी जाना जाता है। काश्मीरीय शैवदर्शन कहने का कारण इसके लेखकों में अधिकांश का काश्मीर देश का निवासी होना है। इसे अद्वैत शैवदर्शन कहने का कारण इसके दार्शनिकों द्वारा अद्वैत को प्रतिपादित करना है। इस दर्शन में परमशिव को लीलाकारी रूप में प्रस्तुत किया गया है। वे इस लीला को निभाते हुए सदैव पञ्चकृत्यशील बने रहते हैं।^१ ये पाँचों कृत्य प्रत्यभिज्ञादर्शन में परमशिव का स्वभाव माने जाते हैं। इन्हीं कृत्यों को करते हुए ही वे सदैव कृतकृत्य होते रहते हैं। इन्हीं को करते हुए वे (परमशिव) इस चित्र-विचित्र जगत् में अपनी लीला का आनंद लेते रहते हैं। वे पञ्चकृत्य हैं—

- | | | |
|------------|-------------|----------|
| १. सृष्टि | २. स्थिति | ३. संहार |
| ४. तिरोधान | ५. अनुग्रह। | |

१. सृष्टि— पारमेश्वरीय पञ्चकृत्यों में सबसे पहला कृत्य है— सृष्टि। यह सृष्टि नामक कृत्य परमेश्वर के अन्तःस्थित पदार्थसमूह का बहिराभासन है।^१ प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार यह समस्त संसार सृष्टि से पहले परमशिव में शिव रूप में ही समरस होकर रहता है। इतना ही नहीं, सारा प्रमातृ-प्रमेय जगत् उत्पत्ति से पहले परमशिव में ही आत्मसात् होकर ही रहता है। यहां यह भी ध्यातव्य है कि सृष्टि से पूर्व यह जगत् परमशिव से अलग न रहकर उसकी इच्छा के रूप में ही रहता है। अतः शक्तिसूत्र में कहा है—
स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वम् उन्मीलयति।^२

इस प्रकार यह जगत् उत्पत्ति से पूर्व निःस्पन्दित इच्छा के रूप में अभेदतया विद्यमान रहता है और सृष्टि रूप से भेद रूप में भासित होने लगता है।^३ यह विश्व जब तक परमशिव के साथ अभेद रूप से स्थित रहता है

१. (क) शिवसूत्र; १.१ (वार्तिक) (ख) पञ्चकृत्यकारी इति। तंत्रालोक; १.१ (विवेक)

२. सृष्टिसंहारकर्तारं विलयस्थितिकारकम्। अनुग्रहकरं देवं प्रणार्तिविनाशनम्। तंत्रालोक; १.१ (विवेक)

३. उन्मीलनम् च अन्तःस्थितस्य बहिराभासनम्। प्रत्यभिज्ञाहृदयम् २ (संस्कृत टीका)

४. शक्तिसूत्र: २

५. अहमिति संविद्रूपतया स्वरूपे स्थितस्य विश्वस्य भावजातस्य इदमितिरूपेण भेदात्मकेन बहिर्भावेन अवभासनसृष्टिः।

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी; भाग, १, पृ. ४

आत्मनिर्माण से ही मानवनिर्माण सम्भव

—डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी

शरीर और मन स्वस्थ रहे तो अभीष्ट समर्थता प्राप्त की जा सकती है। चिन्तन और चरित्र सही हो तो फिर सज्जनोचित व्यवहार भी बन पड़ता है। शिष्टाचार और मित्रता का सहयोगी क्षेत्र सुविस्तृत होता है। यह बड़ी उपलब्धियाँ हैं। 'हम सुधरेंगे जग सुधरेगा' जैसी उक्ति छोटी होते हुए भी अत्यन्त मार्मिक और सारगर्भित है। दूसरों की सेवा-सहायता करने का आरम्भिक किन्तु अत्यन्त प्रभावी तरीका यह है कि जैसा दूसरों को देखना चाहते हैं, वैसा स्वयं बनकर दिखाएं। दूसरे अपनी इच्छानुसार बनें या न बनें, चलें या न चलें, यह संदिग्ध है। क्योंकि सभी पर अपना प्रभाव, अधिकार कहाँ है? पर अपना-आपा तो पूर्णतया अपने अधिकार क्षेत्र में है। जब शरीर को इच्छानुरूप चलाया जा सकता है, जब धन को अपने मन के अनुकूल व्यय किया जा सकता है, तो कोई कारण नहीं कि अपने स्वभाव और क्रियाकलाप को इस ढाँचे में ढाला जा सके जिसे शालीनता का प्रतीक प्रतिनिधि कहा जा सके। श्रेष्ठ शुभारम्भ अपने परिवार से ही प्रारम्भ किया जाना न्यायोचित होगा।

घर पर दीपक की ज्योति जलती है तो आंगन से लेकर पास-पड़ोस तक में प्रकाश फैलता है। दूसरों को प्रभावित करने, बदलने से पहले यदि उसी स्तर का स्वयं को बना लिया जाय तो निश्चित रूप से आधी समस्या का निदान हो जाता है। अपनी ओर से आँखें बन्द रखी जाएं और दूसरों को सुधारने, समझाने के लिए निकल पड़ा जाय तो बात बनती नहीं, अभीष्ट सफलता मिलती नहीं। विफलता को ऐसी निराशाभरी घड़ी आने से पूर्व अच्छा यह है कि कम से कम अपने को भी तो उस स्तर का बना लिया जाय जैसा कि अन्य लोग देखना चाहते हैं।

जब हम मानवीय मूल्य विषय पर चर्चा करते हैं तो सर्वप्रथम समाजसुधार के रूप में एक आवश्यक और सम्मानजनक प्रश्न सामने खड़ा हो जाता है। जिस समुदाय में हम रहते हैं उसकी मान्यताओं और गतिविधियों को ध्यानपूर्वक देखा जाय तो प्रतीत होगा कि उनमें ज्यादातर गलत बातें ही भरी पड़ी हैं। आस्थाओं, मान्यताओं, आकांक्षाओं का युगप्रवाह मानवीय गरिमा के प्रतिकूल अनाचार का ही

तिरोधान। इस कृत्य द्वारा परमशिव पहले अपने स्वातंत्र्य से अपने स्वरूप को भुला कर जीवभाव में प्रकट हो जाते हैं।^{१०} प्रत्यभिज्ञा दर्शन के मतानुसार परमशिव वस्तुतः देश, काल और आकार आदि की स्थिति से परे होने के कारण असीम हैं परन्तु जीवभाव की स्थिति में वे अपने को अपने ही मायीय स्वातंत्र्य से देश, काल और आकार की सीमाओं में बांध लेते हैं। ऐसा करते हुए वे जीवभाव में अपने परमपरमातृत्व को भुला कर अपने में तिरोहित हुए प्रमाता का आनन्द लेते हैं। इतना ही नहीं इस दशा में अपने पराद्वय स्वरूप को भूलने का दिखावा करते हुए अपने-आप में जीव के सदृश जीवभाव का तथा द्वैतताओं का आरोप कर लेते हैं। फिर क्या, स्वरूपगत सभी विशेषताओं में रहते हुए जीवभाव की सीमाओं में रहने वाले जीव की सभी विशिष्टताओं का आरोपकर जीवसदृश आचरण करने लगते हैं और अपने पारमेश्वरीय स्वभाव को भुला डालते हैं तथा सीमित आभासों-अल्पकर्तृत्व आदि को अपनी नियति बना लेते हैं।

५. अनुग्रह- अनुग्रह को शक्तिपात भी कहा

जाता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार परमेश्वर अपने स्वातंत्र्य से जीव को जब अपनी प्रेरणा का विषय बना लेते हैं तब वह सद्गुरु की खोज में निकल पड़ता है या फिर वह सद्गुरु स्वयं उसके पास पहुँच जाते हैं।^{११} यही प्रेरणा पारमेश्वरीय अनुग्रह के नाम से जानी जाती है। यही प्रेरणा जीव के मानव जीवन के लिये परमपुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति में सहायक होती है-

एष च अनुग्रहलक्षणोऽन्त्यः पञ्चमः पारमेश्वरः कृत्यविशेषः परपुरुषार्थप्रापकः^{१२}

वास्तव में इस पारमेश्वरीय अनुग्रह या शक्तिपात के बिना जीव को स्वात्मस्वरूप का ज्ञान हो ही नहीं सकता और वह इस अनुग्रह के बिना पुनः पुनः जन्म-मरण के संसारचक्र में घूमता रहता है।

इसके विपरीत जो इस अनुग्रह को पा लेता है उसे जीवन का भेदमय दृष्टिकोण सर्वथा सदा के लिये समाप्त हो जाता है तथा वह सदा के लिये परमात्मरस में समाविष्ट हो जाता है।

इस तरह यह पञ्चकृत्य प्रत्यभिज्ञा दर्शनानुसार परमशिव के विलास के अटूट अंग हैं। इन्हीं पाँचों कृत्यों से ही परमेश्वर अपनी क्रीड़ा को सम्पन्न करते हैं।

-एसोसिएट प्रोफ़ेसर, संस्कृत विभाग, सरकारी रिपुदमन कॉलेज, नाभा (पंजाब)

१. स्तवचिन्तामणि; ७१

१०. शक्तिपातवशाद्देवी नीयते सद्गुरुं प्रति। परमार्थसार; वि, पृ. ८

११. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, खंड. १ पृ. ११

आत्मनिर्माण से ही मानवनिर्माण सम्भव

जाय। इन उपायों से वातावरण के बदलने में किसी सीमा तक सहायता मिलती भी है।

यह सभी कुछ आवश्यक होते हुए भी पर्याप्त नहीं है। प्रचारक कभी चिरस्थायी नहीं होते। वह अपने समय में अपनी प्रचण्डता का प्रदर्शन करके अल्पकाल में शान्त हो जाते हैं और प्रचार-प्रभाव से उत्पन्न हुआ आवेश कुछ ही देर में पानी के बुलबुले की तरह उछल-कूदकर समाप्त हो जाता है। स्थायित्व अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करने में है। यदि समाजसेवी का निजी व्यक्तित्व ही घटिया हो तो फिर आशा ही नहीं की जानी चाहिए कि मात्र वाचालता के सहारे किन्हीं को अभ्यस्त कुसंस्कारों का परित्याग करने और आदर्श पालन की व्रतशीलता धारण के लिए सहमत किया जा सकेगा। आचार्य तुलसी कहते थे 'जलता हुआ दीपक ही नए दीपक को प्रज्वलित लौ प्रदान कर अपने सम्पर्क में लाकर प्रकाशवान् बना देता है। जो स्वयं में बुझे पड़े हैं वे नए दीपकों को प्रज्वलित कर सकेंगे; इसकी आशा नहीं करनी चाहिए। 'कीचड़ से कीचड़ कैसे धोया जा सकता है। जिसने अपने प्रतिपादनों से अपने आपको सहमत करने में सफलता नहीं अर्जित की, वह दूसरों को सुधार के सन्मार्ग पर चला सकेगा ऐसी आशा किस प्रकार फलित हो? जो स्वयं को नहीं सुधार सका वह अपने अनुकरण का निमन्त्रण किसी को नहीं दे सकता। उसके

वाक्जाल में लोग स्थायीरूप से फँसे नहीं रह सकते। यथार्थता आज नहीं तो कल उजागर होकर रहती है। जब वस्तुस्थिति में, कथनी और करनी में मित्रता देखी जाती है तो उन सभी का विश्वास झूठा माना जाता है, जिन्हें परामर्शों की झड़ी लगाकर प्रभावित, सहमत करने में तात्कालिक सफलता दिखाई देती थी। ऐसे लोगों का आदर्शवादी उत्साह देखते-देखते ठण्डा हो जाता है। कहने को कोई कुछ भी कहे परन्तु प्रायः लोगों की यह यथार्थ मान्यता है कि इन दिनों आदर्शों का प्रतिपालन सम्भव नहीं है। उन्हें कहने-सुनने का मनोविनोद-भर समझा जा सकता है। कथाश्रवण से स्वर्ग मिलने जैसी मूढ़ मान्यताओं से भ्रान्त तो कितने ही लोग रहते हैं, पर उन भक्त श्रोताओं में से कदाचित् ही कोई ऐसे निकलते हैं जो आदर्शों को व्यवहार में उतारने के लिए आवश्यक साहस दिखा सकें। जब उदाहरण ही नहीं दिखाई देते तो कोई कैसे माने कि आदर्श का परिपालन व्यावहारिक एवं सम्भव ही है। यही एक चट्टान इतनी बड़ी है जिससे टकराकर सदैव डूबती देखी जाती है।

पानी का स्वभाव नीचे की ओर बहने का है। वस्तुएं सहज ही ऊपर से हटाने पर नीचे आ गिरती हैं लोकचिन्तन और प्रचलन के सम्बन्ध में भी यही बात है। यदि उन्हें उत्कृष्टता की दिशा में उछालने वाला बड़ा न हो तो पतन पराभव के गर्त में उनका चले जाना सहज स्वाभाविक है।

बाहुल्य रहा है। लोभ, मोह व अन्धकार के आवेश में लोग प्रायः निरर्थक और अनर्थभरी रीति-नीति अपनाए हुए दिग्भ्रान्तों की तरह भूल-भूलैयों में भटकते देखे जाते हैं। मानव-जीवन जैसे अलभ्य अवसर का प्रायः दुरुपयोग ही होता रहता है। ऐसा कुछ नहीं बन पड़ता, जिस पर सन्तोष और प्रफुल्लता से भरा हुआ गर्व किया जा सके। जिससे दूसरे कोई उपयोगी प्रेरणा या प्रकाश ग्रहण करें। इस अभाव का नाम ही भ्रष्टता व दुष्टता है। मान्यताएं और आकांक्षाएं भी बुद्धि को प्रभावित करती हैं। वह उसी के समर्थन के लिए सहमत होती और तदनुरूप ताने-बुनने का कार्य करती देखी गयी हैं। इसलिए मात्र बौद्धिक समाधान कुछ विशेष काम नहीं आते। भाषणों और प्रवचनों की शक्ति सीमित है। लेखनी भी एक सीमा तक ही कार्य करती है। क्योंकि पूर्वाग्रह-ग्रस्त विचारधारा स्वभाव का अंग बन चुकी होती है और वह अभ्यास हठवादिता को छोड़ने के लिए सहज तैयार नहीं होता। व्यक्ति और समाज का सुधार करने के लिए परामर्श-प्रतिपादनों को अन्तःकरण की गहराई तक पहुँचाना चाहिए। ऐसी प्रखर एवं शुद्ध प्रतिभा उत्कृष्ट लोगों में ही जन्म लेती है। प्राथमिकता एवं प्रमुखता देने योग्य क्षेत्र यही है। विशेषतया उनके लिए जो दूसरों के समुदायों को सुधारने की आशा, अपेक्षा रखते हैं और उसके लिए आतुर भी दिखाई देते हैं। यह भावना एवं चेष्टा सराहनीय है। परन्तु उसे प्रभावशाली बनाने हेतु

यही सर्वसुलभ है कि आरम्भ अपने-आपसे ही किया जाय। यही वह बीजारोपण है जो आगे चलकर, अंकुर, पौध, वृक्ष बनते हुए फूल, फलों से लदता है। उसकी छत्रछाया में बैठकर अनेकानेक लोगों को राहत पाने का सुअवसर मिलता है।

यह सत्य है कि समाज से व्यक्ति प्रभावित होता है। वातावरण का प्रभाव एवं दबाव ऐसा है कि हल्के-फुल्के व्यक्तित्वों को अपने प्रवाह में बहा ले जाता है। आँधी के साथ तिनके, पत्ते उड़ ही जाते हैं। सामूहिक प्रथा, प्रचलनों का प्रभाव भी ऐसा ही है। वह दुर्बल मानस वाले अधिकांश लोगों को प्रचलनों का अनुसरण करने के लिए दबाव डालता है। देखा भी यही जाता है कि, विनिर्मित वातावरण में रहने वाले लोगों का चिन्तन, चरित्र, स्वभाव, अभ्यास भी उसी स्तर का बन जाता है। इसलिए समाजविज्ञानी इस बात पर अधिक जोर देते हैं कि सामूहिक वातावरण के सर्वजनीन प्रचलन को सुधारने के लिए प्रबल प्रयत्नों का आश्रय लिया जाय। धुँआधार प्रचार से लेकर आन्दोलन करने, लोकमानस बदलने का प्रयत्न किया जाय। यथासंभव असहयोग, विरोध या संघर्ष का भी आश्रय लिया जाय। आवश्यकतानुसार शासन की ताकत का भी इसके लिए उपयोग किया जाय। यदि आवश्यक हो तो बहिष्कार या सत्याग्रह जैसे अस्त्रों का भी प्रयोग किया जाय। यह प्रतिपादन-परामर्श अपने स्थान पर उचित है। उन्हें आजमाया और क्रियान्वित भी किया

क्रोध विवेक का शत्रु है

— महात्मा चैतन्यमुनि

मनु महाराज जी ने धर्म का दसवां लक्षण अक्रोध बताया है अर्थात् व्यक्ति को कभी भी क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध व्यक्ति का सबसे बड़ा शत्रु है क्योंकि वह सबसे पहले व्यक्ति के विवेक पर ही प्रहार करता है और अविवेक जागृत होने पर व्यक्ति अच्छे-बुरे की पहचान खो बैठता है। उसका अपने ऊपर संयम पूर्णतय समाप्त हो जाता है रामायण में कहा गया है - 'क्रोधी व्यक्ति क्या कहना चाहिए और क्या नहीं कहना चाहिए इस बात का विवेक खो बैठता है। उस क्रोधी व्यक्ति के लिए कहीं भी ऐसा कोई कुकर्म नहीं जिसे वह न कर बैठे और ऐसा कोई कुवचन नहीं जिसे वह न कह बैठे। क्रोधी व्यक्ति के समस्त बल और ऐश्वर्य समाप्त हो जाते हैं।' रामायण में क्रोधी व्यक्ति की जिस स्थिति का वर्णन किया है उसके कारण ही व्यक्ति स्वयं तो दुःखी रहता ही है मगर जिस परिवार, संस्था तथा समाज में ऐसा व्यक्ति होता है वह परिवार, संस्था व समाज भी दुःखी ही रहता है। संसार में प्रत्येक

समस्या का समाधान है मगर उसे बुद्धि एवं विवेक के साथ ही खोजा जा सकता है। जहां बुद्धि और विवेक समाप्त हो जाएं वहां पर किसी समस्या का कोई समाधान नहीं खोजा जा सकता है बल्कि समस्या और अधिक बढ़ जाती है। घर-परिवार या संस्थाओं में छोटी-छोटी बातें जिन्हें पलक झपकते ही समाप्त किया जा सकता है। वे क्रोधी स्वभाव वाले व्यक्ति के कारण इतनी बढ़ जाती हैं कि उनका समाधान प्राप्त करने में वर्षों लग जाते हैं। कहीं-कहीं तो परिवार ही टूट जाते हैं या परिवार के लोग वर्षों न्यायालयों में धन, समय और अपना चैन खोकर भटकते रहते हैं। इस सम्बन्ध में किसी ने बहुत ही सुन्दर कहा है-

बलवानपि कोपजन्मनस्तमसो,

नाभिभवं रुणद्धि यः॥

क्षयपक्ष इवैन्दवीः कलाः,

सकला हन्ति स शक्तिसम्पदः॥

यदि बलशाली व्यक्ति भी क्रोध से उत्पन्न हुए आन्तरिक अन्धकार की उत्पत्ति को नहीं

आजकल यही घटनाएं समाज में हो रही हैं। व्यक्तियों के समूह का नाम ही समाज है। व्यक्तियों का निजी स्तर जैसा भी भला-बुरा होता है समाज भी ठीक उसी प्रकार बन जाता है। व्यक्तियों में निकृष्टता भरती बढ़ती चले और समाज राष्ट्र का स्तर ऊँचा बना रहे, यह हो नहीं सकता। इसलिए देश, धर्म, समाज, संस्कृति की वास्तविक सेवा करने के इच्छुकों में से प्रत्येक को अपने प्रभावक्षेत्र में व्यक्तित्वों का स्तर ऊँचा उठाने के लिए सच्चे अर्थों में ठोस प्रयत्न करने होते हैं। इसके लिए सर्वप्रथम अपने को, अपने निजी परिवार को वैसा बनाना होता है जैसा कि अन्यान्यों को सुधारने के सम्बन्ध में सोचा जाता है। आत्मनिर्माण ही विकसित होकर समाज-निर्माण या विश्वनिर्माण जैसे महाप्रयोजन में कुछ कहने लायक योगदान दे पाता है। उस प्रयत्न के लिए बनी सही योजना ही लक्ष्य तक पहुँचती एवं अभीष्ट परिणाम उत्पन्न करती है। समाजसुधार के क्षेत्र में जिन लोगों ने भी कारगर उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, उन सभी को सर्वप्रथम आत्मनिर्माण का कार्य हाथ में लेना पड़ा है। वही सनातन उपचार आज की परिस्थितियों में भी उतना ही उपयोगी है।

प्रचलित व अभ्यस्त अवाँछनीयता के घेरे को तोड़कर उत्कृष्टता के क्षेत्र में प्रवेश करना एक साहसिक कार्य है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण

को तोड़कर अन्तरिक्ष में प्रवेश करने वाले राकेटों की तरह इसके लिए आन्तरिक ऊर्जा चाहिए। वह यदि समाज के शुभेच्छुकों के जीवन में है नहीं तो उन्हें प्रचण्ड आत्मबल को उभारकर अपने भीतर से ही उपार्जित करनी चाहिए। एकाकी निश्चय करने और उस पर चल पड़ने के लिए अपना ही शौर्य पराक्रम काम देता है। इसके लिए तथाकथित स्वजन सम्बन्धियों से प्रोत्साहन या सहयोग प्राप्त करने की आशा बेकार है। सभी को क्रमबद्धता पसन्द है, सभी सुविधा चाहते हैं। सभी आदर्शों की उपेक्षा करते हैं। अपवाद तो इस क्षेत्र में कहीं-कहीं ही दीख पड़ते हैं। ऐसी दशा में लोगों का मुँह ताकने और अन्यों के प्रयोग करने को आगे आने की घटना देखने के लिए प्रतीक्षा में बैठे रहना व्यर्थ है।

प्रचलित अवाँछनीयताओं से मुक्त अपने को रखना ही उचित है। अभीष्ट सम्प्रवृत्तियों को अपने स्वभाव एवं अभ्यास में उतारना चाहिए। इतना बन पड़ने पर लोगों को यह कहने में हिचक न रहेगी कि आदर्शवादिता का परिपालन असम्भव या व्यावहारिक है। अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुए पस्त-हिम्मत लोगों में भी नवीन उत्साह का संचार किया जा सकता है। सामाजिक सर्वतोन्मुखी अभ्युदय का शुभारम्भ भी आत्मनिर्माण द्वारा सम्भव है।

-८६/३२३, देवनगर, कानपुर-२०८००३। मोबा: ०९२३५५११०८३

क्रोध विवेक का शत्रु है

उसके पतन का कारण बन गया। क्रोध के ही वशीभूत होकर उसने एक और भूल कर दी कि उसने अपने छोटे भाई के समझाने पर उसे भी लंका से निष्कासित कर दिया। इसलिए वह विभीषण भी उसकी मौत का कारण बना तथा एक उक्ति प्रसिद्ध हो गई—घर का भेदी लंका ढाए।

कंस, जरासन्ध, शिशुपाल और दुर्योधन आदि के पतन का कारण यह अहंकार एवं अहंकार का दोस्त क्रोध ही रहा। सिकन्दर यूनान से अपनी विजय-यात्रा पर निकला और अपने साहस एवं बल पर विजय प्राप्त करने में सफल होता चला गया। वह बहुत ही बहादुर और साहसी वीर था मगर अहंकारी और क्रोधी बहुत था। कहते हैं कि उसके आदेश को न मानने की हिम्मत किसी में नहीं थी। सिकन्दर ने जो कह दिया उस कार्य को करना ही होता था। वह अपने आदेश के विरुद्ध कोई भी बात सुनने के लिए तैयार नहीं होता था। जो उसने कह दिया बस उस पर अमल होना चाहिए। भारतवर्ष में भी उसने अपने मुख्य सेनापति को जो उसका बहुत ही बहादुर सेनानी तथा उसका अन्तरंग मित्र था, आदेश दिया कि रातोंरात ही शत्रु के राज्य पर आक्रमण करना है। ऐसा सुनकर उसके मित्र ने सुझाव दिया कि रात के अन्धेरे में हमारी सेना का आगे बढ़ना कठिन है और सबसे बड़ी समस्या यह है कि इस समय

नदी में भी बहुत अधिक बाढ़ आई हुई है। यदि इस समय हम आक्रमण के लिए कूच करते हैं तो हमारे बहुत से सैनिक नदी में ही बह जाएंगे। अपने सेनापति के इस उपयुक्त तथा तर्कपूर्ण सुझाव को दरकिनार करते हुए क्रोधी सिकन्दर ने तलवार निकालकर उसका सिर कलम कर दिया.... परिणाम यह हुआ कि सिकन्दर की सेना ही उससे बागी हो गई और उसे भारतवर्ष से पराजित होकर वापस अपने वतन लौटने के लिए कूच करना पड़ा और मार्ग में समुद्र के एक टापू पर ही उसकी मृत्यु हो गई.....

इसीलिए कहा गया है कि जो व्यक्ति अक्रोधी है वही विवेकशील होगा और उसी की सर्वत्र विजय होगी। महाभारत में अक्रोधी व्यक्ति की महता के बारे में कहा गया है कि—जैसे सारथि घोड़े को वश में कर लेता है, वैसे ही जो उत्पन्न हुए क्रोध को वश में कर लेता है—‘उन में से घोड़े की लगाम खींचने वाला नहीं बल्कि क्रोध को वश में करने वाला वास्तविक नियन्त्रण-कर्ता कहलाता है। हे देवयानि! जो मनुष्य उत्पन्न हुए क्रोध को अक्रोध के द्वारा अपने में से निकाल फेंकता है, उसने सबको जीत लिया है, ऐसा समझो। जो क्रोध को रोक लेता है, जो निन्दा और व्यंग्यभरे वचनों को सहन कर लेता है तथा जो सन्तप्त नहीं होता वह ऐश्वर्य का सच्चा अधिकारी पात्र है। एक ओर

रोकता है तो वह वैसे ही अपने सम्पूर्ण बल और ऐश्वर्य को नष्ट कर देता है जैसे कृष्ण-पक्ष चन्द्रमा की कलाओं को। महाभारत में इस बात को इस प्रकार से कहा गया है - 'क्रोध से व्यक्ति अवधियों का वध कर सकता है, वध्यों की पूजा कर सकता है और अपने-आप को मृत्यु-मुख में धकेल सकता है। दक्षता, अत्याचार को न सहना, पराक्रम और शीघ्रता ये जो तेज के गुण हैं, इनको क्रोध से भरा हुआ व्यक्ति ठीक-ठीक प्राप्त नहीं कर सकता।' क्रोध का तो यहां तक कहना है कि - 'मैं संसार को अन्धा और बहरा बना देता हूँ, चेतनावान् धीर व्यक्ति को भी जड़-सा बना देता हूँ। मेरे प्रभाव में व्यक्ति न तो अपने कर्तव्य को देख पाता है और न ही हित की बात सुनता है तथा बुद्धिमान् व्यक्ति अपने पड़े हुए को भी स्मरण नहीं कर पाता है।'

जो व्यक्ति क्रोध के वशीभूत हो जाता है उसके संसार में बहुत से शत्रु हो जाते हैं, वह स्वयं दूसरों के साथ बुरा व्यवहार करता है तो दूसरे भी उसके साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं। उसके भीतर कठोरता, ईर्ष्या-द्वेष, घृणा, घबराहट, भय और प्रतिकार लेने की भावना घर कर जाती है जिससे वह निरन्तर परेशान रहता है। उसी उद्वेग और परेशानी में वह ऐसे कार्य भी कर बैठता है जिन्हें करने के बाद उसे

स्वयं ही पछताना भी पड़ता है। हितोपदेश में एक बहुत ही सुन्दर कथा आती है जिसमें क्रोध के वशीभूत होकर एक ब्राह्मण अपने स्वामी-भक्त नेवले को ही मार देता है। इसीलिए कहा गया है कि क्रोध धैर्य, विद्या और शास्त्र-ज्ञान सब को नष्ट कर देता है इसलिए क्रोध के समान और कोई दूसरा शत्रु नहीं है। क्रोधी व्यक्ति संसार में अतः विनाश को ही प्राप्त हुआ है। हमारे विगत इतिहास में कितने ही लोगों के उदाहरण मिलते हैं जो क्रोध के वशीभूत होकर समाप्त हो गए। रावण के पास किसी वस्तु का अभाव नहीं था। उसके राज्य को सोने की लंका इसीलिए कहा जाता था क्योंकि उसका राज्य सम्पूर्ण भोग-ऐश्वर्यों से परिपूर्ण था.... विद्वान् था.... बलवान् था मगर अपनी बहिन सूर्पनखा के उकसाने पर क्रोध में आ गया। सूर्पनखा ने एक मनघड़त प्रसंग बनाकर झूठमूठ ही कह दिया कि राम और लक्ष्मण ने उसका शील भंग करने का प्रयास किया है.... रावण के अहंकार को जागृत किया कि तुम जैसे बलवान् योद्धा की बहिन को अपमानित किया है.... उस उकसाने के कारण उसका अहंकार जागृत हुआ और अहंकार के जागृत होते ही क्रोध उत्पन्न हो गया और वह प्रतिकार लेने के लिए श्रीराम की पत्नी सीता जी को हरण करके ले आया। बस सीता का हरण करना ही

क्रोध विवेक का शत्रु है

परिणामस्वरूप व्यक्ति अच्छे काम करता है और मीठी वाणी बोलता है, अक्रोधी होने से उसे अगला जन्म भी अच्छा मिलता है।'

क्रोध को कैसे दूर करें, इस सम्बन्ध में कुछ सूत्र देते हुए वे लिखते हैं-

‘क्रोध को दूर करने की मन में तीव्र इच्छा होनी चाहिए कि- मैं इस क्रोध से बहुत दुःखी हो चुका हूँ, अब मैं इसे छोड़ ही देना चाहता हूँ। क्रोध को छोड़ने के लिए दृढ़ संकल्प होना चाहिए कि - मैं पूरा परिश्रम करके क्रोध को छोड़कर ही श्वास लूंगा। जब तक क्रोध पूरी तरह छूट न जाए, तब तक क्रोध को छोड़ने के लिए पूर्ण पुरुषार्थ करते ही रहें। शान्त स्वभाव के व्यक्तियों के साथ उठना-बैठना आदि व्यवहार रखें, क्रोधी स्वभाव वालों से दूर रहें। दूसरे लोग मेरे साथ अच्छा ही व्यवहार करें इस प्रकार की इच्छाओं को कम करते जाएं। प्रतिदिन कम से कम दो या तीन घण्टे मौन रहने का अभ्यास करें। तेज मिर्च-मसाले तथा मांस, अण्डे, शराब आदि तामसिक भोजन का त्याग करें तथा घी, दूध, फल आदि सात्विक आहार लेवें। जब कोई क्रोध की घटना उपस्थित होने वाली हो, तब अवश्य ही मौन हो जाएं। यदि क्रोध की घटना के समय मौन रहना संभव न हो और बोलना आवश्यक ही हो तो बोलने से पूर्व उसी समय यह दृढ़

संकल्प करें कि- विना क्रोध किए ही बातचीत करूंगा। यदि किसी घटना में बहुत अधिक क्रोध आने की संभावना हो और आप उसे नियन्त्रित करने में अपने-आप को असमर्थ अनुभव करते हों, तो उस स्थान से हटकर दूर चले जावें। यदि कभी भूल से क्रोध कर बैठे हों तो अपनी स्थिति को ठीक करने के लिए एक गिलास ठण्डा पानी पीएं। यदि क्रोध कर बैठें तो उसका प्रायश्चित्त करें अर्थात् उस दिन एक घण्टा विशेषरूप से मौन रहकर परमात्मा का ध्यान करें.... प्रार्थना करें.... और फिर से संकल्प करें कि क्रोध नहीं करूंगा। प्रतिदिन दोनों समय प्रातः-सायं परमात्मा का ध्यान करें और प्रार्थना करें कि हे परमात्मन्! मुझसे यह क्रोध दूर कर दीजिए और मेरी बुद्धि को अच्छे मार्ग पर चलाईए।

काम, लोभ, मोह अहंकार और क्रोध ये सभी व्यक्ति को पतन की ओर ले जाने वाले हैं। ये ऐसे मानसिक विकार हैं जिन्हें यदि प्रारंभ में ही काबू नहीं किया गया तो ये व्यक्ति का सर्वनाश ही कर देते हैं। इन्हें विकार इसलिए कहा गया है क्योंकि जब ये आक्रमण करते हैं तो व्यक्ति उद्वेलित हो जाता है.... उसके मन और मस्तिष्क का सन्तुलन बिगड़ जाता है.... वह परेशान हो जाता है.... आप कल्पना करें कि एक व्यक्ति सोने के लिए जा रहा है.... वह

जो सौ वर्ष तक प्रतिमास निरन्तर विशेष यज्ञ करे और दूसरी ओर जो किसी पर भी क्रोध न करे-इन दोनों में से क्रोध न करने वाला अधिक अच्छा है।' रामायण में भी क्रोध पर विजय पाने वाले को ही असली मनुष्य तथा महान् आत्मा बताया गया है- 'वे महान् आत्मा वाले लोग धन्य हैं जो उत्पन्न हुए क्रोध को बुद्धि से वैसे ही शान्त कर देते हैं जैसे प्रज्वलित अग्नि को जल से। ऐसे सज्जन ही अपने-आप को वश में रखने वाले होते हैं। जो मनुष्य उत्पन्न हुए क्रोध को क्षमा के द्वारा, सांप जैसे कैंचुली को, वैसे ही अपने से दूर हटा देता है वही असली मनुष्य कहलाता है।'

क्रोध एक मानसिक विकार है इसलिए व्यक्ति को इससे बचना चाहिए। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि यदि व्यक्ति एक मिनट के लिए क्रोध करता है तो उससे उसकी पाचन प्रक्रिया पर इतना अधिक कुप्रभाव पड़ता है कि उस व्यवस्था को पुनः सामान्य अवस्था में आने के लिए पूरा एक महीना लग जाता है। क्रोध से व्यक्ति दूसरे का अहित तो बाद में करता है मगर पहले अपना ही अहित करता है। क्रोध से और भी अनेक हानियां होती हैं। आचार्य विवेक भूषण जी ने क्रोध से होने वाली हानियों तथा क्रोध को दूर करने के बारे में एक परिपत्र निकाला था, पाठकों के लाभ के लिए

हम उसे यहां पर देना उपयुक्त समझते हैं-

'क्रोध से सिर में दर्द होता है, ब्लड-प्रेसर बढ़ता है, एसिडिटी होती है, शरीर में कम्पन रोग होता है, शरीर में कमजोरी आती है, व्यक्ति पागल हो जाता है, क्रोधी व्यक्ति से लोग घृणा करने लगते हैं- कोई उसके पास नहीं बैठता है, समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा कम होकर उसकी निन्दा होती है, बुद्धि का ह्रास होता है तथा निर्णय लेने की क्षमता घटती है, क्रोधी व्यक्ति का अपने मन-वाणी और शरीर पर कोई नियन्त्रण नहीं रहता, परिणामस्वरूप व्यक्ति कुछ भी बोल देता है या गलत काम कर बैठता है, क्रोध करने के बाद जब व्यक्ति होश में आता है, तब पश्चाताप करता है अर्थात् दुःखी होता है कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था। क्रोध करने से उसे अगला जन्म भी अच्छा नहीं मिलता है। प्रेमपूर्वक व्यवहार अर्थात् क्रोध न करने के लाभ बताते हुए वे लिखते हैं- प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से शरीर स्वस्थ रहता है, शरीर की वृद्धि होती है, मन प्रसन्न होता है, बुद्धि का विकास होता है, निर्णय लेने की क्षमता बढ़ती है, समाज में प्रतिष्ठा बढ़ती है, परस्पर सबका सुख बढ़ता है, अक्रोधी व्यक्ति को सभी लोग चाहते हैं, प्रेम करते हैं और उससे सम्बन्ध रखना चाहते हैं, मन-वाणी और शरीर पर नियन्त्रण रहता है-

वसुधैव कुटुम्बकम्

—डॉ. अनु खुल्लर

भारतीय संस्कृति का आदि-स्रोत वैदिक संस्कृति है। 'संस्कृत-साहित्य' में भारतीय संस्कृति के आधारभूत जीवन के उच्चतम मूल्यों को महत्त्व दिया गया है। इस में कोई सन्देह नहीं कि भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्त्वों को उद्घाटित करने में वैदिक साहित्य का योगदान सर्वाधिक है।

वेद भारतीय धर्म-शास्त्र के सब से पहले और प्रमुख आधार हैं। वैदिक संस्कृति में शाश्वततत्त्व किसी विशेष जाति या देश के लिए सीमित न होकर समग्र संसार एवं मानवमात्र के लिए हैं। इसी लिए वेद में समस्त मानव-जाति का पिता परमात्मा को माना गया है—

शृण्वन्तु विश्वेऽमृतस्य पुत्रा आग्ने धामानि दिव्यानि तस्थुः। (यजुर्वेद-११.५)

उपर्युक्त मन्त्र में मानव-जाति को एक ईकाई के रूप में माना गया है। इस तरह मनुष्य चाहे किसी भी देश, जाति, धर्म एवं रंग का हो, वह परमपिता परमेश्वर का पुत्र है। इसी गुण को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से अभिहित किया गया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' द्वारा ही भारतीय संस्कृति विश्व को एकता का उपदेश देती है अर्थात् यह समस्त संसार कुटुम्ब अर्थात्

परिवार है। इस उदात्त उक्ति में विश्व-बन्धुत्व की मंगलमयी भावना सन्निविष्ट है। इसी भाव को हितोपदेश में कहा गया है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

(हितोपदेश-१.६९)

अर्थात् यह मेरा, यह पराया, ऐसे विचार संकीर्ण मानसिकता के लोग करते हैं। उदारहृदय एवं उच्च चरित्र वाले व्यक्ति के लिए समस्त संसार ही परिवार के समान होता है। इसी कारण से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' भारतीय संस्कृति का मूल-तत्त्व स्वीकार किया गया है। क्योंकि भारतीय संस्कृति में मानव-हित में देश-काल की परिधि को स्वीकार नहीं किया गया। विश्व के सभी मनुष्यों में एकता की अनुभूति करना ही विश्व-बन्धुत्व है। मानव-जाति की एकता ही भारतीय-संस्कृति का मानव के लिए सर्वोत्तम शुभ-सन्देश है। इसी भावना से किसी देश व जाति का एक-दूसरे के प्रति विरोध, ईर्ष्या, द्वेष, मनोमालिन्य इत्यादि स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा से विश्व की एकता को उस सीमा तक अस्तित्व

अपने बिस्तर पर लेट गया है मगर उसे काम-वासना सताने लगी। ज्यों ही उसके मन में काम-वासनारूपी विकार आया, उसकी नीन्द उससे दूर भाग जाएगी.... वह लाख प्रयत्न करने पर भी सो नहीं सकेगा। जब तक यह पैदा हुआ विकार शान्त नहीं हो जाता है तब तक वह व्यक्ति सो ही नहीं सकेगा। उस विकार को दूर करने पर ही उसे नीन्द आएगी। इसी प्रकार यदि लोभ की वृत्ति जाग गई तब भी वह व्यक्ति सो नहीं सकेगा। मोह की वृत्ति जाग गई तब भी नीन्द नहीं आएगी और अहंकार रूपी विकार ने ग्रस लिया तब भी वह अपने बिस्तर पर करवटें ही बदलता रहेगा.... उसे नीन्द नहीं आएगी। यही स्थिति क्रोध की भी है, क्रोधी व्यक्ति भी इस विकार के मन में रहते हुए सो नहीं सकेगा। उस व्यक्ति को तब तक चैन नहीं आ सकता जब तक कि उस विकार से वह अपना पीछा न छुड़ा ले। पीछा छुड़ाने के दो ही तरीके हैं- या तो वह उस विकार को भोगकर शान्त करे या फिर आत्मसंयम से। यदि भोगकर अर्थात् उसे क्रियात्मकता के साथ जोड़ दिया तो उसके

कारण वह अपनी बहुत प्रकार की हानि कर बैठता है.... और हमारे मनीषियों ने यह भी एक तथ्य निकाला है कि भोगों को भोगने से व्यक्ति कभी भी तृप्त नहीं हो सकता है बल्कि भोगने से अर्थात् उसे क्रियात्मकता के साथ जोड़ने से उस भोग को भोगने के संस्कार और अधिक गहरे होते चले जाते हैं। कामी व्यक्ति और अधिक कामी होता चला जाएगा, लोभी व्यक्ति और अधिक लोभी होता चला जाएगा, मोही व्यक्ति और अधिक मोहग्रस्त होता चला जाएगा, अहंकारी व्यक्ति और अधिक अहंकारी होता चला जाएगा और क्रोधी व्यक्ति और भी अधिक क्रोधी होता चला जाएगा। इसलिए हमारे मनीषियों का आदेश है कि आत्म-संयम के द्वारा ही इन विकारों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। इस बात का भी ध्यान रखें कि इन विकारों को जितना हम इनकी प्रारंभिक अवस्था में ही भगा देने में सफल होंगे उतना ही अच्छा है क्योंकि इनका अभ्यास प्रबल होने पर इनसे पीछा छुड़ाना और अधिक कठिन होता चला जाएगा।

-वैदिक वशिष्ठ आश्रम (महर्षि दयानन्द धाम) महादेव,
सुन्दरनगर-१७४४०१ (हि० प्र०)

मध्यकाल में भक्ति-आन्दोलन का नेतृत्व : कबीरदास

— श्री अनोखी लाल कोठारी

मध्यकाल में भक्ति-आन्दोलन की शुरुआत सर्वप्रथम दक्षिण के अलवार भक्तों द्वारा की गयी। दक्षिण भारत से उत्तरभारत में १२ वीं शताब्दी के प्रारंभ में रामानन्द द्वारा यह आन्दोलन लाया गया। भक्ति-आन्दोलन का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हिन्दूधर्म एवं समाज में सुधार तथा इस्लाम एवं हिन्दूधर्म में समन्वय स्थापित करना था। अपने उद्देश्यों में यह आन्दोलन काफी सफल रहा। शंकराचार्य के अद्वैतदर्शन के विरोध में दक्षिण में वैष्णव-संतों द्वारा चार मतों की स्थापना की गयी जो निम्न प्रकार हैं :-

१. “विशिष्ट अद्वैतवाद” की स्थापना १२ वीं सदी में रामानुजाचार्य ने की।
२. “द्वैतवाद” की स्थापना १३वीं सदी में मध्वाचार्य ने की।
३. “शुद्ध अद्वैतवाद” की स्थापना १३वीं सदी में विष्णु स्वामी ने की।
४. “द्वैतवाद व अद्वैतवाद” की स्थापना १३वीं सदी में निम्बार्काचार्य ने की।

उपर्युक्त सन्तों ने भक्तिमार्ग को ईश्वर-प्राप्ति का साधन मानते हुए “ज्ञान भक्ति” और “समन्वय” को स्थापित करने का प्रयास किया। इन सन्तों की प्रवृत्ति सगुण-भक्ति की थी। इन्होंने राम, कृष्ण, शिव, हरि आदि के रूप में आध्यात्मिक व्याख्याएं प्रस्तुत कीं। चौदहवीं एवं १५वीं शताब्दी में भक्ति-आन्दोलन का नेतृत्व श्री कबीरदास के हाथों में था। मध्यकाल में ‘भक्ति’ एवं ‘सूफी’ आन्दोलन अपने महत्त्वपूर्ण पड़ाव पर पहुँच गए थे। इस काल में भक्ति आन्दोलन के सूत्रपात एवं प्रचार-प्रसार के महत्त्वपूर्ण कारण इस प्रकार हैं :-

१. मुस्लिम शासकों के बर्बर शासन से कुंठित एवं उनके अत्याचारों से त्रस्त हिन्दू-जनता ने ईश्वर की शरण में अपने को अधिक सुरक्षित अनुभव कर भक्ति-मार्ग का सहारा लिया।
२. मुस्लिम शासकों द्वारा आये दिन मूर्तियों को नष्ट एवं अपवित्र कर देने के कारण, बिना

में लाया जा सकता है, जहाँ मानव आन्तरिक बन्धन की अनुभूति अनुभव करे। इसी भाव को अथर्ववेद में स्पष्ट किया गया है—

सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु

(अथर्ववेद-१९.१५.६)

अर्थात् सब दिशाएं मेरी मित्र हों, अर्थात् सभी मानव मित्रतापूर्वक रहें। भारतीय संस्कृति का उद्देश्य मानवमात्र के मन में ऐक्य की भावना प्रस्थापित करना। वह समस्त मानवों में एक ही आत्मा का दिग्दर्शन करना सिखाती है। इसी सर्वहित भावना को गीता में प्रकट किया गया है। (गीता ५.२५)

इस तरह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की सूक्ति राष्ट्रीयता की संकुचित भावना से ऊपर उठकर विश्व के मानव को अपना कुटुम्ब मानने की भावना को जागृत कर अखण्ड मानवता का भाव प्रतिपादित करती हुई विश्वप्रेम का मार्ग प्रशस्त करती है।

भारतीय संस्कृति में परिवार की ममता की संकीर्ण सीमा से उठकर मानवता के लिए विशाल हृदयता एवं उदार मनोवृत्ति का व्यापक दृष्टिकोण अपनाने के लिए यजुर्वेद में कहा गया है कि जो मानव सभी भूत-प्राणियों में परमेश्वर के दर्शन करता है, वह सभी प्राणियों में अपने समान आत्मा को देखकर किसी से घृणा नहीं करता। (यजुर्वेद- ४०.६) इस दृष्टिकोण से मनुष्य सब को अपने समान देखता है। इसी भाव को यजुर्वेद में अन्यत्र

भी कहा गया है। (यजु. ४०.७)

इसी भावना को ऋग्वेद में भी प्रकट किया गया कि हे मनुष्यो! तुम सब परस्पर मिलकर एक चाल चलो, एक साथ चलो। तुम सब प्रेमपूर्वक मिलकर सब एक समान वचन बोलो। तुम सब एक ज्ञान वाले बनो। (ऋ. १०.१९१.२) सब एक-मन हो जाएं। जैसे प्रकृति में सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथिवी आदि सहयोग से कार्य करते हैं। इस मन्त्र का आशय है कि परस्पर संगठित होकर एक-सम्मति से रहो। इससे निःसन्देह ईर्ष्या, द्वेष व घृणा आदि स्वयं ही मानवों के हृदय से तिरोहित हो जायेंगे।

अतः 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आशय है कि समस्त जीव-सृष्टि एक परमपिता परमात्मा की देन है। अतएव सम्पूर्ण मानवजाति अपनत्व, ममता, स्नेह, प्रेम एवं आदरभाव पर आधारित उपर्युक्त स्वाभाविक भावनाएं सभी प्राणियों के प्रति अपना सकें तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा सार्थक हो सकती है। क्योंकि यदि व्यक्ति उदार भावना, उदारदृष्टि एवं उदार हृदय से कार्य करने लगे तो 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' का उदात्त उपदेश चरितार्थ हो सकेगा। यदि मानव विश्व को कुटुम्ब समझ कर आचरण करे तभी विश्व में चिरस्थायी शान्ति स्थापित हो सकेगी। इसी जीवनदर्शन की आज विश्व को सर्वाधिक आवश्यकता है। यही काव्य-भावना भारतीय संस्कृति की विश्व को महान् देन है।

-#८८, मानसाहिया कालोनी, नजदीक २१ नं. फाटक, पटियाला।

दूरभाष- ०१७५-२३०२९१३

भूमि से हटाकर कर्मयोगी की भूमि पर लाकर खड़ा कर दिया। कबीर ने अपना सन्देश अपने दोहों के माध्यम से जनसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत किया। इसके अनुयायी कबीरपंथी कहलाये। इसमें हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों संप्रदायों के लोग शामिल थे। कबीर की रचनाओं में साखी, सबद, रमैनी, दोहा, ओली रेखताल आदि प्रमुख हैं।

जो व्यक्ति तत्कालीन समाजव्यवस्था के प्रति तीव्र आलोचक थे और हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात करते थे। उनमें से कबीर और नानक का योगदान सबसे अधिक है। कबीर के जन्म और बचपन के विषय में काफी अनिश्चय है। लोकश्रुतियों के अनुसार वे एक विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे, जिसने उन्हें तालाब पर छोड़ दिया था और उनका लालन-पालन एक जुलाहे ने किया। उसने अपने पालक का व्यवसाय सीख लिया लेकिन अपने वाराणसी प्रवास के दौरान कबीर हिन्दू और मुस्लिम संतों के संपर्क में आये। कबीर ईश्वर के एक

होने पर बल देते थे। ईश्वर को उन्होंने राम, हरि, गोविन्द, अल्लाह, साई, साहिब आदि अनेक नामों से पुकारा है। उन्होंने मूर्ति-पूजा, तीर्थयात्रा, पवित्र नदीस्नान, नमाज जैसे कर्मकाण्डों का तीव्र विरोध किया। वे साधु-जीवन अपनाने के लिए गृहस्थी का सामान्य जीवन त्यागने को भी अनावश्यक मानते थे। यद्यपि कबीर यौगिक क्रियाओं से परिचित थे फिर भी वे हठयोग और पुस्तकीय ज्ञान को वास्तविक ज्ञान के लिए जरूरी नहीं समझते थे। इतिहासकार कहते हैं कि कबीर का लक्ष्य प्रेम के धर्म का प्रचार था जो सब वर्णों और जातियों में एकता स्थापित कर सके। उन्होंने हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्मों के उन तत्वों को अस्वीकार किया जो इस भावना के विरोधी थे और जो व्यक्ति के वास्तविक आध्यात्मिक मंगल में महत्वपूर्ण नहीं रहे थे। कबीरदास जी की मृत्यु १५१० ई. में मगहर में हुई। वह रामानन्द के शिष्य तथा सिकन्दर लोदी के समकालीन थे।

-महावीर मार्ग (ठोकर-आयड) उदयपुर (राज.) पिन-३१३००१

मूर्ति एवं मंदिर के ईश्वर की आराधना के प्रति लोगों का झुकाव बढ़ा, जिसके लिए उन्हें भक्ति-मार्ग का सहारा लेना पड़ा।

३. सूफी संतों की उदार एवं सहिष्णुता की भावना तथा एकेश्वरवाद में उनकी प्रबल निष्ठा ने हिन्दुओं को प्रभावित किया। जिस कारण से हिन्दू, इस्लाम के सिद्धान्तों के निकट संपर्क में आये। इन सबका प्रभाव भक्ति-आन्दोलन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

४. हिन्दुओं ने सूफियों की तरह एकेश्वरवाद में विश्वास करते हुए ऊँच-नीच एवं जात-पात का विरोध किया।

५. हिन्दू एवं मुस्लिम जनता के आपस में सामाजिक एवं सांस्कृतिक संपर्क से दोनों के मध्य सद्भाव, सहानुभूति एवं सहयोग की भावना का विकास हुआ। इस कारण से भी भक्ति-आन्दोलन के विकास में सहयोग मिला।

६. शंकराचार्य का ज्ञानमार्ग व अद्वैतवाद अब साधारण जनता के लिए जानने योग्य नहीं रह गया था।

भक्ति-आन्दोलन को दक्षिण से उत्तर में लाने का श्रेय रामानन्द को ही दिया जाता है। उन्होंने सभी जातियों एवं धर्म के लोगों को अपना शिष्य बनाकर एक तरह से जातिवाद पर कड़ा प्रहार किया। उनके शिष्यों में कबीरदास (जुलाहा) सेना (नाई) रैदास (चमार) आदि

थे। उन्होंने एकेश्वरवाद पर बल देते हुए राम की उपासना की बात कही। हिन्दी में उपदेश देने वाले प्रथम वैष्णव संत रामानन्द ही थे।

कबीरदास- कबीरदास का जन्म १४४० ई. में वाराणसी में हुआ था। ये सुल्तान सिकन्दरशाह लोदी के समकालीन थे। मध्यकालीन संतों में कबीरदास का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक योगदान चिरस्मरणीय है। एक महान् समाज-सुधारक के रूप में उन्होंने समाज में व्याप्त हर तरह की बुराइयों के खिलाफ संघर्ष किया, जिनमें उन्हें काफी हद तक सफलता मिली। कबीर ने राम, रहीम, हजरत, अल्लाह आदि को एक ही ईश्वर के अनेक रूप माना। उन्होंने जातिप्रथा, धार्मिक कर्मकाण्ड, बाहरी आडम्बर, मूर्तिपूजा, जप-तप, अवतारवाद आदि का घोर विरोध करते हुए एकेश्वरवाद में आस्था एवं निराकार ब्रह्म की उपासना को महत्त्व दिया। कबीर ने ईश्वर-प्राप्ति हेतु शुद्ध प्रेम, पवित्रता एवं निर्मल हृदय की आवश्यकता बतायी।

कबीर ने कहा था कि 'हे माधव! अपनी कंठमाला ले लो, क्योंकि भूखे पेट मैं तुम्हारा भजन नहीं कर सकता।' 'निर्गुण भक्तिधारा से जुड़े कबीर ऐसे प्रथम भक्त थे, जिन्होंने सन्त होने के बाद भी पूर्णतः सहिष्णुता की भावना को बनाये रखते हुए धर्म की अकर्मण्यता की

शमन हो। उनकी अध्यात्म शैली के प्रचलन का आधार सतगुरु, सत्संग और ईश्वर का ध्यान था जिसकी पुष्टि उनकी वाणी से होती है। यथा-

- लालजी गोविंद का गुण रस भरा,
पीय सके न कोय।
पीवेगा कोई सूरमा,
जाकू सतगुरु भेंटा होय॥
- अरे मन राम सूलौ लाय।
लालदास जी सतगुरु मिले हैं,
हरिचरनन चित लाय॥
- घर घर व्यापक रम रहा,
काहू दीखे नाहिं।
दीखने को दूर नहीं,
देखो ध्यान लगाहिं॥

ध्यान करने हेतु मन की भूमिका के प्रति श्री लालदास ने सभी को सावधान रहने को कहा। जैसा कि श्री कबीर की वाणी है-
कबीरा या मन एक है, चाहे जहाँ लगाय।
चाहे हरि की भक्ति कर, चाहे विषय कमाय॥

श्री लालदास स्थानीय समाज में निहित विषय-भोग के प्रति लोगों में व्याप्त कुरीतियों से बचने हेतु ध्यान करने और साधना की सफलता के लिए मनमुख न होकर गुरुमुख होने का संदेश देते थे यथा-

मन का कहान कीजिये, मन है मोटा सूत।
जाय पड़े दरियान में, गया हाथ से छूट॥

श्री लालदास ने दैनिक जीवनशैली में मृदुभाषण की व्यावहारिकता को अपनाने और कुसंग को त्यागने का आह्वान किया। जैसा श्री

मीराबाई ने भी साधना की सफलता हेतु कुसंग त्यागने के लिए एक पद में कहा है-
तज कुसंग बैठ सत्संग नित हरिचर्चा सुनलीजे।
मनुआं रामनाम रस पीजे॥

- समानांतर श्री लालदास की वाणी है-
- लालजी कुसंग बिगाड़े साध कू,
कैसा ही कुल शुद्ध।
एक बूंद कांजी पड़े,
फाड़े सौ मन दूध॥
- लाल जी कुसंग को आदर बुरो,
भली संत की त्रास।
जिन घट हर हर ऊबरे,
उन घट हर प्रकास॥

श्री लालदास ने हिंदू और मुसलमानों को समान रूप से भगवद्-प्रेम का मंत्र दिया और व्यक्त किया कि "जीवमात्र एक ही ईश्वर का अंश है और उनमें परस्पर प्रेम होना वांछित है।" श्री लालदास को न केवल हिंदुओं ने पूज्य माना अपितु मुसलमानों ने पीर का दर्जा दिया। उनका कथन था कि -

हिंदू तुरको येक ही साहिब,
दुवधा दो जग जाई।
झूठी काया, झूठी माया,
झूठी जगत की बड़ाई॥

मुगल शहजादा दाराशिकोह ने भी श्री लालदास को अपना एक गुरु माना था। श्री लालदास ने १०८ वर्ष की आयु पाई थी और उनके देहांत के पश्चात् उनके अनुयायियों ने लालदासी पंथ की स्थापना की जिसका केन्द्र नंगला गांव (भरतपुर) स्थित श्री लालदास का समाधि मंदिर है।

-१२, महावीर नगर, टोंक रोड, जयपुर-३०२०१८

संत श्री लालदास

—श्री वीरेन्द्र नाथ भार्गव

पंद्रहवीं शताब्दी में राजस्थान के मेवात (अलवर) भूभाग में श्री लालदास का जन्म एक निर्धन मेव परिवार में हुआ था। जन्म से बालक संस्कारी था और किंवदंती है कि जन्म के समय बालक ने अपनी माता से बात की थी। बड़ा होने पर श्री लालदास निकट के वन क्षेत्रों में जाकर लकड़ियां काटते थे और उन लकड़ियों को समीप अलवर नगर में जाकर बेचकर उस पैसे से अपने परिवार के पालन में सहयोग करते थे। वनक्षेत्र में कुछ दुर्गम स्थानों पर तपस्वियों-सिद्धों और जोगियों के स्थान थे जहां पहुँच कर श्री लालदास को उनसे सहज जिज्ञासावश भेंट करने और उनके सत्संग का लाभ उठाने का अवसर मिलता रहता था। अनेक अवसरों पर उन्हें अलवर जाने के मार्ग पर रमते साधुओं-फकीरों की सेवा करने का अवसर मिलता था जिसे वे श्रद्धापूर्वक किया करते थे। उन भ्रमणशील साधु-संतों से श्री लालदास को भारत के सुदूर स्थानों पर बने तीर्थ-स्थलों, शिक्षा-केन्द्रों और तत्कालीन भक्तिपरम्परा के प्रचार-प्रसार हेतु चलाए जा रहे विभिन्न अभियानों के विषय में

सूचना मिलती थी। संत श्री नानक, श्री कबीर, श्री रैदास और श्री दादूदयाल जैसे महापुरुषों के सामाजिक उत्थान की सूचना से श्री लालदास के मन में भी अध्यात्मज्ञान को जानने और उससे स्थानीय समाज में चेतना जगाने की इच्छा जाग्रत हुई। अवसर पाकर श्री लालदास अपना घर छोड़कर यात्राओं पर निकल गए और अंततः आत्मज्ञान प्राप्त करके पुनः अपने गांव में लौटकर आ गए। तत्कालीन हिंदूसमाज ऊँच-नीच से ग्रस्त था तो साथ ही धर्मपरिवर्तन के मुसलमान शासकों के अभियान से समाज त्रस्त भी था। स्थानीय समाज के दैनिक जीवन में चोरी करना, परस्पर बुरा सोचना और करना, परनारी आसक्ति, ब्याज लेना, बनावटीपन और आडंबरपूर्ण जीवन व्यतीत करने जैसे दुर्गुणों से समाज प्रभावित हो चला था। ऐसे दुर्गुणों-व्यसनों के चलते समाज में ईश्वर के प्रति आस्था के प्रसंग पर मतभेद थे और एकरूपता का अभाव था। श्री लालदास ने अध्यात्म पर आधारित समाज को एक नया दिशाबोध देने का प्रयास किया जिससे प्रचलित सामाजिक कुरीतियों का

पुरास्पन्दत इति मासे द्वितीये तृतीये वा ।^३

प्रायः सभी धर्मशास्त्रकारों के अनुसार यह संस्कार गर्भाशय में गतिशील होने से पहले गर्भस्थ का सम्पन्न हो जाना चाहिए ।^४

इसी मत का अनुकरण शंखस्मृति, बृहस्पतिस्मृति, जातुकर्ण्य आदि में किया गया है। आयुर्वेद के अनुसार इस संस्कार से गर्भकालीन समस्त दाहादि कष्ट दूर होते हैं। कालिदास भी इस संस्कार के पोषक हैं। राजा दिलीप को सुदक्षिणा के गर्भवती होने का पता चलते ही वे गर्भस्थ शिशु का पुंसवन संस्कार करते हैं—

यथाक्रमं पुंसवनादिकाः क्रियाः धृतेश्च
धीरः सदृशीर्व्यधत्त सः ।^५

यहां कालिदास का स्पष्ट संकेत है कि धर्मशास्त्रों की दृष्टि से कर्तव्य संस्कारों का विधिवत् पालन रघुवंशी करते हैं। ऐसा ही एक गर्भस्थ संस्कार प्रसंग शाकुन्तल में भी आया है। छठे अंक में धनमित्र की पत्नी के पुंसवन संस्कार की चर्चा यह संकेत करती है कि कालिदास इस परम्परा को लोकविश्रुत बताना चाहते हैं ।^६

राजा दुष्यन्त इस संस्कार को सुनते ही पुत्रहीन होने का दुःख व्यक्त करते हैं। अर्थात् पुंसवन संस्कार पिता के लिए महत्त्वपूर्ण और निश्चयात्मक है कि वह अब तो पिता बन ही जायेगा। कालिदास ने इस संस्कार के काल

और फल का समुचित निर्देश किया है। दिलीप के प्रसंग में काल का निर्देश है तो धनमित्र के प्रसंग में फल का। कालिदास की यही संस्कार पोषकत्व दृष्टि है।

३) जातकर्म— जातकर्म में शिशु के जन्म के बाद नाल आदि काटने का संस्कार होता है। दिलीप ने रघु के जन्म लेते ही गुरु वसिष्ठ को आमन्त्रित किया। वसिष्ठ ने पूरे विधि-विधान एवं धर्मशास्त्रीय रीति से बालक का जातकर्मादि संस्कार सम्पन्न कराया ।^७

रघुवंश के चतुर्दश सर्ग में दुःखी सीता को वाल्मीकि विश्वास दिलाते हैं कि तुम इस आश्रम में निश्चिन्त होकर निवास करो, मैं तुम्हारी सन्तान के सभी संस्कार विधिविधान से पूर्ण करूँगा ।^८ तृतीय प्रसंग में सर्वदमन के जन्म के समय ही ऋषि मारीच ने उसका जातकर्म संस्कार किया था। मारीच स्वयं दुष्यन्त को इस संस्कार का नाम लेते हुये बताते हैं कि चिन्ता की बात नहीं मैंने इस बालक का जातकर्मादिसंस्कार कर दिया है।

एक अन्य प्रसंग भी है कि पुरवा और उर्वशी के पुत्र के जातकर्म संस्कार का ज्ञान तापसी कराती है ।^९

४) नामकरण संस्कार— यह संस्कार व्यक्ति की विश्रुति से सम्बद्ध है। इसके अतिशय महत्त्व एवं चारित्रिक विकास तथा सामाजिक विकास में योगदान को देखते हुये धर्मशास्त्रकारों

३. पा. गृ., १.१४.२

४. याज्ञ. स्मृति, १.११

५. रघु., ३.१०

६. शाकुन्तल, ६.२२ का गद्यांश

७. रघु., ३.१८

८. वही, १४.१५

९. वि. ५.१० का गद्यांश

धर्मशास्त्रों के निकष पर कालिदास के संस्कार

— डॉ. कृष्णमोहन पाण्डेय

स्रष्टा की सृष्टि में संस्कारों का संविधान सर्वोत्कृष्ट है। व्यक्तित्व का विकास संस्कारों के सोपान से शिरस्थ होता है। वैदिक विधि-विधानों के साथ धर्मशास्त्रों की परम्परा के पोषक महाकवि कालिदास ने अपनी समस्त रचनाओं में जितने भी नायकों का चयन किया है वे सभी वैदिक परम्परा के अनुपालक हैं तथा विविध संस्कारों से संस्कृत हैं। कालिदास संस्कारों के पोषक हैं। विविध धर्मशास्त्रियों के अभिमतों के अनुसार १०-१६ तक की संख्या में संस्कार बहुमान्य हैं। इनमें विविध धर्मशास्त्रियों के अनुसार दस अति-अनिवार्य हैं। कालिदास ने अपनी रचनाओं में दस प्रमुख संस्कारों का धर्मशास्त्रीय रीति से उल्लेख किया है। कालिदास लोक-प्रेमी कवि हैं। संस्कार का प्रत्याख्यान उनका मुख्य विषय नहीं है तथापि अपने पारम्परिक संस्कार-प्रेम को विविध पात्रों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। सभी नायकों के सभी संस्कारों के वर्णन से प्रमुख प्रतिपाद्य में बाधा की सम्भावना अधिक होती है। अतः अलग-अलग पात्रों के अलग-

अलग संस्कार का वर्णन करने का पूर्ण प्रयास किया है।

कालिदास ने सभी कृतियों में संस्कार शब्द का उल्लेख प्रायः तीन बार किया है तथा अंकित संस्कारों का विधिवत् उल्लेख किया है-

१) गर्भाधान - रघुवंश के द्वितीय सर्ग में गुरु वसिष्ठ के आश्रम से वापस आने के पश्चात् दिलीप की पत्नी रानी सुदक्षिणा ने वंश चलाने के लिए गर्भ धारण किया।^१ कालिदास रघुवंश के प्रारम्भ में ही कहते हैं कि रघुवंशी सन्तानोत्पादन के लिए ही विवाह करते हैं। धर्मशास्त्रों की दृष्टि में गर्भाधान के विषय में क्रमशः गर्भाधान का अर्थ, काल और कर्ता विचारणीय होते हैं। इन तीनों पक्षों पर कालिदास ने बहुत मन्थन किया है।

२) पुंसवन संस्कार- धर्मशास्त्रों की दृष्टि में पुंसवन संस्कार गर्भाधान के निश्चय होने के पश्चात् ही होता है। इस संस्कार की चर्चा अथर्ववेद में भी है।^२ गृह्यसूत्रों ने इस संस्कार को गर्भाधारण के बाद किसी पुरुष नक्षत्र में किया जाने वाला बताया है-

१. रघु, २.७.५

२. अथर्व. ३-२३

विधान भी है कि चूड़ाकरण के बाद शिशु को लिपिज्ञान करवाया जाय।

६) विद्यारम्भ संस्कार- धर्मशास्त्रों के अनुसार यह संस्कार उपनयन से पूर्व हो जाना चाहिये। इसके अन्तर्गत बालक को लिपि का ज्ञान कराया जाता है। यद्यपि यह संस्कार बहुत प्रसिद्ध नहीं है तथापि धर्मशास्त्रों द्वारा उल्लिखित है। दिलीप ने रघु का विद्यारम्भ संस्कार किया था।^{१०}

७) उपनयन संस्कार- उपनयन का सामान्य अर्थ मौंजीमेखला धारण तथा ब्रह्मव्रत का पालन करना है। रघु का विधिवत् उपनयन संस्कार धर्मशास्त्रीय रीति से किया गया।^{११} कालिदास कहते हैं कि गुरुकुल में प्रवेश उपनयन के पश्चात् होना धर्मशास्त्रीय रीति है। याज्ञवल्क्य कहते हैं-

स गुरुर्यः क्रियां कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति।

उपनीय ददद्वेदमाचार्यः स उदाहृतः।।^{१२}

रघु का उपनयन भी इसी पद्धति से हुआ जिसके बाद रघु को अनेक गुरुओं ने अलग-अलग विषयों का ज्ञान कराया। ऐसा ही प्रसंग लव कुश के सम्बन्ध में भी कालिदास ने प्रकट किया है कि वाल्मीकि ने लव और कुश को वेद-वेदांगों की शिक्षा दी। इस प्रकार वेद-वेदांगों का अध्ययन बिना उपनयन के सम्भव नहीं है।^{१३}

क्षत्रियों के लिए शस्त्रविद्या का अध्ययन

भी धर्मशास्त्रीय पद्धति है, कालिदास ने इस पक्ष में भी धर्मशास्त्रों का ही अनुकरण किया है। दिलीप ने अपने पुत्र रघु को रुरुमृग के चर्म से आविष्ट कर अस्त्र-शस्त्रविद्या की शिक्षा दी।^{१४}

राम का उपनयन संस्कार का स्मरण कराते हुये कालिदास यह बताना चाहते हैं कि प्रत्येक गृहस्थी को यह संस्कार यथोचित समय पर धर्मशास्त्रीय रीति से सम्पादित करना चाहिए।

८) गोदान संस्कार- इस संस्कार को मनु तथा याज्ञवल्क्य ने केशान्त कर्म कहा है। कालिदास लोकपरम्परा, कुलमर्यादा और धर्मशास्त्रीय विधियों को कहीं से भी ढीला नहीं छोड़ते। किसी न किसी माध्यम से इन अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कारों को बताकर यह ज्ञापित कराना चाहते हैं कि समाज में संस्कारों की महती आवश्यकता है। उपनीत रघु ने भी सभी विद्याओं का अध्ययन करने के उपरान्त गोदान संस्कार किया था-

अथास्यगोदानविधेरनन्तरं विवाहदीक्षां निरवर्तयद्गुरुः।^{१५}

इसमें संस्कार्य व्यक्ति के श्मश्रुओं का सर्वप्रथम क्षौर किया जाता है और इसी अवसर पर शिष्य गुरु को गोदान करता है। रघु ने ऐसा ही किया था।

९) विवाह संस्कार- विवाह वैदिककाल से ही विधि-सम्मत संस्कार है। विवाहों के अनेक प्रकार हैं। सभी प्रकार के विवाहों का

ने इसे नामकरण की संज्ञा दी है-

नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः ।
नाम्यैव कीर्तिः लभते मनुष्यः ततः प्रशस्तं खलु नामवर्त ॥^{१०}

मनु ने बताया है कि ब्राह्मणों की संज्ञा मंगलयुक्त, क्षत्रियों का रक्षा युक्त अथवा बलयुक्त, वैश्यों का धन युक्त तथा शूद्रों का सेवायुक्त होनी चाहिए।^{११}

प्राच्य-परम्परा के पोषक महाकवि कालिदास ने नामकरण संस्कार को विशेष महत्त्व दिया है। रघुवंश में पांच स्थलों पर इस संस्कार का उल्लेख है। (१) दिलीप ने रघु का नामकरण संस्कार किया। दिलीप शास्त्रज्ञ थे। पारस्कर के अनुसार पुरुषों का नाम दो या चार अक्षरों का होना चाहिये। दिलीप ने लघि धातु का अर्थ 'गमन' समझकर अपने पुत्र का नाम रघु (द्विअक्षरात्मक) इसलिए रखा कि वह सम्पूर्ण शास्त्रों के पार पहुँचेगा और युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं के व्यूहों को तोड़कर उनके पार भी जायेगा।^{१२} रघु भी शास्त्रज्ञ थे। धर्मशास्त्रों के अनुसार नक्षत्रानुकूल पुत्र का नामकरण होना चाहिये। रघु के पुत्र ने ब्रह्ममुहूर्त में जन्म लिया, अतः ब्रह्मा को आधार मानकर उन्होंने उसका नाम अज रखा।^{१३}

शास्त्रज्ञों की परम्परा में उत्पन्न अज ने भी अपने पुत्र का नाम धर्मशास्त्रों के अनुसार चार अक्षरों का दशरथ रखा। इस नाम की व्याख्या

भी कालिदास करते हैं।^{१४}

दशरथ के पुत्र का नाम कुलगुरु वसिष्ठ ने सभी नामों में कल्याणकारी द्विअक्षरात्मक 'राम' रखा-

राम इत्यभिरामेण वपुषा तस्य चोदितः ।

नामधेयं गुरुश्चक्रे जगत्प्रथममंगलम् ॥^{१५}

राजभवन से दूर वन में जन्म लेने वाले लव, कुश का भी नामकरणसंस्कार कालिदास ने आदिकवि ऋषिकल्प वाल्मीकि से करवाया है। यहां द्विअक्षरात्मक नामकरण धर्मशास्त्रीय विधि का अनुपालन है।^{१६}

इस प्रकार सभी रघुवंशियों का नामकरण संस्कार धर्मशास्त्रीय रीति से कालिदास निरन्तर करते आये हैं।

५) चूड़ाकरण संस्कार- दीर्घायुष्य, सौन्दर्यवर्धन एवं कल्याण की वृद्धि चूड़ाकरण संस्कार से होती है।^{१७} सुश्रुत ने भी इस संस्कार की महत्ता का प्रतिपादन किया है।^{१८} अत्यन्त महत्त्वशाली दीर्घायुष्य प्रदान करने वाले इस संस्कार का संयोजन कालिदास ने अपने मुख्य नायक रघु के लिए किया है। रघु का यह संस्कार अन्य पात्रों के संस्कारों का प्रतीक है। दिलीप की गोद में खेलने वाले और पिता को प्रसन्नता प्रदान करने वाले रघु का चौलकर्म चूड़ाकरण संस्कार ही है।^{१९} यह धर्मशास्त्रीय

१०. चौ.मि.स.भा., पृ. २४१

१३. वही, ५.३६

१६. वही, १५.३२

११. मनु., २.३१

१४. वही, ८.२९

१७. आप. गृ., १.१७.१२

१२. रघु., ३.२१

१५. वही, १०.६७

१८. सु. चि., २४.७२

इंसानियत

—श्री कमलाप्रसाद चौरसिया

वह पर्यटन स्थल ही था। वहां ऐश्वर्य, अभिमान, खुशी, विषाद आदि चित्तवृत्तियां एकत्र हुई थीं। कोई सौन्दर्य का दर्शन करने, मन बहलाने आया था तो कोई अपनी तड़क-भड़क दिखाने, कोई मस्ती करने तो कोई गुलछर्रे उड़ानें, कोई ताजी हवा से अपने को प्रफुल्लित करने तो कोई अपना मूड बदलने। सब अपने-अपने संवेगों से लबालब थे। कोई भाग दौड़ कर रहा था तो कोई अपलक प्रकृति में बिखरे सौन्दर्य का आनन्द ले रहा था; कोई कंकड़-पत्थर उठाकर वृक्षों, लताओं, तड़ाग की ओर फेंक रहा था तो कोई गुमसुम बैठा था। सब अपनी-अपनी तरंग में थे। इंसानियत खड़ी-खड़ी सबकी ओर निहार रही थी। मन ही मन मुस्कुरा रही थी। उसके नेत्र करुणार्द्र थे। वह इन सब पर तरस खा रही थी। उसके मुंह से बार-बार चुह-चुह शब्द निकल रहा था।

प्रेम सबको जानता था किन्तु कोई उसको नहीं जानता था। वह क्रमशः एक-एक की ओर जाता, किंचित् क्षण खड़ा रहता। अधरों से

हर्ष की रश्मियां बिखेरता। किसी पर कोई प्रतिक्रिया न देख आगे बढ़ जाता। उसकी इच्छा होती कि सबके पास जाकर उन्हें छाती से लगाए और उनके विकार हर ले। वह प्रत्येक की ओर हाथ बढ़ाता किन्तु कोई भी उसके भाव को नहीं समझ सका। इंसानियत विस्मित थी। प्रेम से संवाद करने के लिए आकुल थी किन्तु भावुकता में उसके शब्द खो गए। उसके नेत्रों से अश्रु ढलक पड़े थे।

सबके अपने-अपने वाहन थे। प्रेम के पास कोई वाहन नहीं था। प्रेम ने कभी वाहन की आवश्यकता नहीं समझी। वह क्रमशः सबके दर्शन कर वाहनों की ओर चल पड़ा। एक-एक वाहन को अपने हाथ के कोमल स्पर्श से छूता और उन पर चढ़ी धूल को साफ करता। धूल के उड़ते ही चहक उठता। तभी धूल भरी आँधी आई। आँधी के वेग से लगा कि वह सबको उड़ा ले जाएगी। सब अपने वाहनों की ओर लपके।

ऐश्वर्य ने अपनी चमचमाती कार स्टार्ट

धर्मशास्त्रों के निकष पर कालिदास के संस्कार

धर्मशास्त्रीय हेतु पुत्र उत्पत्ति आदि धर्म-निर्वहण है। कालिदास धर्मशास्त्र की इस महनीय परम्परा से प्रभावित हैं। रघुवंश में कहा है कि प्रजायै गृहमेधिनाम्।^{१६} विवाहों के प्रसंग में शिव पार्वती, दुष्यन्त शकुन्तला, अज इन्दुमति, राम सीता, कुश कुमुद्वती का विवाह सम्पादित किया गया है। ये सभी विवाह सवर्ण-विधि के हैं, जो धर्मशास्त्रीय रीति का प्रमुख रूप से अनुकरण है। कालिदास असवर्ण विवाह को मान्यता नहीं देते। धर्मशास्त्रों में अनुलोम और सवर्ण विवाह को ही उत्तम माना गया है और कालिदास इसी परम्परा के निर्वहण के इच्छुक हैं। कालिदास ने प्रायः स्वयंवर, प्राजापत्य, गान्धर्व और आसुर विवाह की चर्चा की है।

१०) अन्त्येष्टि- सनातनी परम्परा में अन्त्येष्टि अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कार है। इस संस्कार से मनुष्य ऐहिक जीवन की समाप्ति करता है। अपने जीवन काल में विविध क्रियाओं तथा विधि-विधानों के द्वारा अपने दोषों का शमन करता हुआ जब प्राणत्याग करता है तब उसकी आत्मा के प्रस्थान के पश्चात् उसके जीवित सम्बन्धी लोक में उसके कल्याण की भावना से उसका अन्तिम संस्कार करते हैं, जिसे

अन्त्येष्टि कहा जाता है। कालिदास ने भी इस संस्कार का बहुशः वर्णन किया है जो विधि सम्मत हैं। जैसे- रघु की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र ने संन्यासियों के समान अग्निरहित अन्त्येष्टि विधि का सम्पादन किया।^{१७} तदनन्तर उनके और्ध्वदेहिक कर्मों का सम्पादन किया।^{१८} इन्दुमति का संस्कार भी अज विधि-विधान से ही करते हैं।^{१९} राम ने जटायु के दाह संस्कार के बाद और्ध्वदेहिक कार्य का सम्पादन भी किया।^{२०} अग्निवर्ण का अन्तिम संस्कार राज्य के निपुण पुरोहितों ने धर्मशास्त्रीय रीति से गृहोपवन में किया।^{२१} इस प्रकार कालिदास सनातनी परम्परा से सम्पन्न होने वाले सभी संस्कारों को विधिसम्मत करने का निर्देश अपने काव्यों के माध्यम से देते हैं। यह धारणा निर्मूल है कि महाकवि कालिदास केवल प्रेम के कवि हैं अपितु इन सभी संस्कारों के प्रति निष्ठा तथा कार्यपरता देखकर यह दृढ़ धारणा बनती है कि कालिदास सामाजिक मर्यादा, संस्कार, कुलपरम्परा का पोषण धर्मशास्त्रीय रीति से करने वालों में अग्रणी भी हैं।

-असिस्टेंट प्रोफेसर, स.ध.आ. संस्कृत महा. विद्यालय, डोहगी, ऊना (हि.प्र.)

२६. रघु., १.५

२९. वही, ८.७३

२७. वही, ८.२५

३०. वही, १२.५६

२८. वही, ८.२६

३१. वही, १९.५४

आचार्य द्रोण का व्यक्तित्व

— श्री हरिगोपाल

आचार्य द्रोण प्राचीन भारत की दिव्य विभूतियों में से एक हैं। शस्त्र और शास्त्र दोनों में पारंगत आचार्य द्रोण का नाम महर्षि वेदव्यास ने सर्वत्र सम्मान के साथ लिया है। आचार्य द्रोण विषयक बहुविध प्रशस्तिपरक श्लोकों से महाभारत भरा पड़ा है। जिनसे उनकी उदारता, सहिष्णुता और बहुज्ञता का बोध होता है।

महाभारत में इन्हें स्थान-स्थान पर धनुर्धरों में श्रेष्ठ, अपराजेय, महान् योद्धा के रूप में सुप्रतिष्ठित किया गया है।^१ तत्कालीन योद्धाओं की सहज मान्यता थी कि द्रोण को युद्ध में देवताओं समेत देवराज इन्द्र भी जीत नहीं सकते हैं। द्रोण के प्रचण्ड पराक्रम से दुःखी कुन्ती के पुत्रों को देखकर यही बात अर्जुन से कृष्ण ने कही थी—

नैष युद्धे न संग्रामे जेतुं शक्यः कथंचन।

स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो देवैरपि सवासवैः॥^२

आचार्य द्रोण धनुर्धरों में श्रेष्ठ हैं जब तक इनके हाथों में धनुष रहेगा तब तक इन्हें युद्ध में इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता भी जीत नहीं सकते

हैं। भीष्मोपरान्त उनके विकल्प रूप में सेनापति पद पर आचार्य द्रोण का ही सर्वसम्मत निर्विरोध चयन हुआ था। इस अवसर पर कर्ण ने कहा था— जो इन समस्त योद्धाओं में आचार्य, वयोवृद्ध, गुरु तथा शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ हैं, वे आचार्य द्रोण ही सेनापति बनाए जाने योग्य हैं।^३

वे सम्पूर्ण रणविज्ञान में पूर्ण निष्णात थे। इसके साथ ही योग के सिद्ध-साधक भी थे। रण-क्षेत्र में योगबल से प्राणों को ऊर्ध्वोन्मुख कर, दुर्लभ ब्रह्मलोक की प्राप्ति इन्होंने की थी।^४

महाभारत के महायुद्ध के समय इनकी आयु के विषय में 'वयसा शितिपंचकः' पांच अस्सी वाला अर्थात् चार सौ वर्ष का कहा गया है, जो सिद्ध योगबल से ही सम्भव है।

आचार्य द्रोण को बुद्धि, पराक्रम, युद्धकौशल, नीतिविजय, तप, कृतज्ञता आदि समस्त गुणों में सबसे बढ़-चढ़ कर माना गया है।^५ मनुकथित शास्त्र में प्रवीण तथा भगवान् शंकर की दी हुई बाण-विद्या और अनेक प्रकार

१. महा. द्रोणपर्व ५/१८

४. वही, १९२/५०-५३

२. वही, १९०/१०

५. वही, १९३/४३

३. वही, ५/१७

६. वही, ६/२-७

की। प्रेम ने उसे हाथ दिया। वह भी सुरक्षित स्थान पर जाना चाहता था। ऐश्वर्य ने गाड़ी रोकी, सिर खिड़की से बाहर निकाला और सौम्यभाव का प्रदर्शन करते हुए बोला, 'मेरी गाड़ी में जगह तो है पर तुम्हारे योग्य नहीं है। हट्टे-कट्टे हो। दौड़ लगा दो। हो सकता है, मुझसे पहले अपनी झोंपड़ी में पहुँच जाओ।'

ऐश्वर्य की गाड़ी ने फर्फटा लगाया। अभिमान की गाड़ी आती हुई दिखी। प्रेम ने उसे हाथ दिया। अभिमान गुस्से में आ गया- 'क्या समझता है तू, मैं तुझे अपनी गाड़ी में बैठा लूँगा। हट जा। मुझे तेरे स्पर्श से अपनी गाड़ी गंदी नहीं कराना। अपने पैरों की ओर देख, कीचड़ से सने हैं; हाथों की ओर देख धूल सने हैं। तुझे शर्म नहीं आई मुझसे लिफ्ट माँगते। हट जा, नहीं तो तेरे ऊपर गाड़ी चढ़ा दूँगा।'

अभिमान की गाड़ी आगे बढ़ते ही खुशी की गाड़ी आई। प्रेम ने उसे भी हाथ दिया। खुशी ने गाड़ी तो रोकी किन्तु भर-भर चालू रखी। इशारे से अपनी ओर बुलाया और बोला, 'प्यारे भाई! और कोई अवसर होता तो मैं जरूर तुम्हें लिफ्ट देता। इस समय मैं बहुत ही उत्फुल्ल हूँ। इस मनःस्थिति में मुझे किसी का दखल पसन्द नहीं। माफ करना।'

खुशी की गाड़ी फुर्र से चली गई। विषाद की गाड़ी रेंगते हुए आई। उसने दूर से ही प्रेम को हाथ उठाए देख लिया था, गाड़ी रोक दी। मुँह लटकाए हुए बोला, 'मित्र, इस समय मेरा ठिकाने पर मन नहीं। मेरा सिर भारी है। मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो मित्र! आपका उपकार होगा।'

'कौन हो बन्धु तुम! आओ, इधर आओ! मेरी गाड़ी में जगह है।'

प्रेम ने पलटकर देखा- कोई उसे बुला रहा है। वह उसके निकट गया। दोनों ने आँखें मिलाई। प्रेम ने हाथ बढ़ाया, 'मैं प्रेम', इंसानियत ने हाथ थाम लिया, 'मैं इंसानियत।' इंसानियत ने प्रेम को गले लगाया। गाड़ी में बैठाया। प्रेम ने कहा, 'गाड़ी स्टार्ट करो। चलो, किसी सुरक्षित स्थान पर चलें। हमें यह आँधी उड़ा ले जाएगी।'

इंसानियत मुस्कराई, 'आप आकर मुझमें समा गए हो प्रेम। अब कोई आँधी, बवण्डर, तूफान हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। तुम महान् हो। तुमसे ही तो दुनियां में शान्ति आने वाली है। यह आँधी खुद-ब-खुद शान्त हो जाएगी।'

और आँधी शान्त हो गई।

-आई-०१/०२, वर्द्धमान ग्रीन पार्क, अशोका गार्डन, भोपाल-४६२०२३
मोबा: ९६३०४१९३५४

भारतीय समाज एवं संस्कार

— सुश्री पूनम लता

भारतीय संस्कृति, सभ्यता और संस्कारों के स्रोत वेद ही हैं। भारतीय जीवन में संस्कारों का महत्त्व वैदिक-काल से चला आ रहा है। मानवजीवन को सुन्दर एवं उच्च बनाने के लिए हमारे वैदिक ऋषियों ने जिन रीतियों का सृजन किया वे ही वस्तुतः आगे चलकर संस्कार के नाम से प्रसिद्ध हो गईं। संस्कारों द्वारा प्राचीन ऋषियों ने मानव-जीवन के प्रत्येक अंग को विकसित करने के लिए संस्कार को धार्मिक तथा सामाजिक समारोह का रूप दिया। आयु के अनुसार मानव के विकास की विविध अवस्थाएं होती हैं अतः संस्कारों का संयोजन भी आयु के अनुरूप किया गया है। संस्कारों का आरम्भ माता के गर्भ में शिशु के आने के साथ हो जाता है और मृत्युपर्यन्त होते रहते हैं। संस्कार जीवन के प्रत्येक भाग को व्याप्त कर लेते हैं। ये संस्कार इस प्रकार व्यवस्थित किये गए हैं कि जीवन के आरम्भ से ही व्यक्ति उनके प्रभाव में आ जाता है। संस्कृति को जीवित रखने के लिए संस्कारों की अपरिहार्य रूप से आवश्यकता है। किसी साधारण या

विकृत वस्तु को विशेष क्रियाओं द्वारा उत्तम बना देना ही उसका संस्कार है। इस साधारण मनुष्य-जीवन को विशेष प्रकार की धार्मिक प्रक्रियाओं द्वारा उत्तम बनाया जा सकता है, जिससे कि वे जीवन में परम उत्कर्ष को प्राप्त कर सकें। ये विशिष्ट धार्मिक प्रक्रियाएँ ही संस्कार हैं। संस्कार, संस्कृति के आधारभूत केन्द्र अथवा मूलस्रोत हैं। संस्कारों के न रहने पर संस्कृति भी नहीं रहेगी। संस्कारों का उद्देश्य आध्यात्मिक उत्थान है। जीवन की सार्थकता केवल बाह्य-सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं है अपितु वह आभ्यान्तर तत्त्व के रूप में मानस-पटल पर अंकित करती है। आज सांसारिक निकटता ने जीवन को दूसरे रूप में प्रभावित कर, इन संस्कारों की महत्ता को कुछ कम अवश्य कर दिया है लेकिन इनकी जड़ें सुदृढ़ तथा दूर तक फैली हुई हैं। संस्कारों के अभाव में जीवन की घटनाएं शरीर की दैनिक आवश्यकताओं और आर्थिक व्यापार के समान अनाकर्षक, चमत्कारहीन और जीवन के भावुक संगीत से रहित हो जाती हैं। संस्कार

के अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञाता कहा गया है।^{१०}

(क) **स्वाभिमानी**- आचार्य द्रोण स्वाभिमानी थे, क्योंकि वे अहंकारपूर्वक अपने पराक्रम का बखान नहीं करते हैं। दुर्योधन ने आचार्य द्रोण से युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने का वरदान माँगा, तो आचार्य द्रोण ने निश्चल भाव से कहा कि यदि अर्जुन युधिष्ठिर की रक्षा न करें तो मैं युधिष्ठिर को जीवित पकड़ सकता हूँ। वह कहते हैं कि इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता भी अर्जुन को युद्ध में नहीं जीत सकते हैं। अतः मैं भी अर्जुन को जीतने में समर्थ नहीं हूँ। यह ठीक है कि अर्जुन मेरा शिष्य है। उसने मुझसे अस्त्र-विद्या सीखी है किन्तु वह तरुण है, पुण्यकर्मों से युक्त है तथा दृढ़निश्चयी भी है और देवताओं से दिव्यास्त्र प्राप्त किए हैं। अतः मैं अर्जुन से लड़ने के लिए उत्साहित नहीं हूँ।^{११}

(ख) **क्षमाशीलता**- आचार्य द्रोण में क्षमाशीलता का गुण विद्यमान है। दुर्योधन के उपहासपूर्ण वचनों को सुनकर भी वह उसे क्षमा कर देते हैं जैसे दुर्योधन कहता है कि- 'हमसे ही आपकी जीविका चलती है, तो भी आप हमारा अप्रिय करने में संलग्न हैं। मैं नहीं जानता था कि आप शहद में डुबाये हुए छुरे के समान हैं।'^{१२} इसी प्रकार भीमसेन द्रोणाचार्य से कहते हैं कि आपने ब्राह्मण होते हुए भी ब्राह्मणोचित कार्यों का पालन नहीं किया, अपितु क्षत्रियोचित कर्तव्यों का पालन किया

है, जिससे क्षत्रियों का संहार हो रहा है।^{१३} भीमसेन के इस आक्षेप का आचार्य ने कोई उत्तर नहीं दिया जैसे पर्वत वर्षा के आघात को सहन करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने अपनी क्षमाशीलता का परिचय देते हुए भीमसेन के इन वचनों को सहन कर लेते हैं। इससे इनकी क्षमाशीलता द्योतित होती है।

(ग) **महासत्त्व**- आचार्य द्रोण महासत्त्व के गुण से सम्पन्न थे। अश्वत्थामा की मृत्यु का समाचार सुनकर उनका अन्तःकरण शोक और क्रोध से अभिभूत नहीं हुआ। महाभारत की समरभूमि में ऋषियों ने आकर आचार्य द्रोण से कहा- संसार में आपके रहने का समय समाप्त हो गया है।^{१४} आपको इस धराधाम से प्रस्थान करना है। आचार्य द्रोण ने ऋषियों की इस बात को सुनकर धैर्यपूर्वक समाधिस्थ होकर अपने प्राणों का त्याग किया।

(घ) **व्यूहकला विशेषज्ञ**- आचार्य द्रोण ने महाभारत के युद्ध में चक्रव्यूह,^{१५} मण्डलार्द्धव्यूह,^{१६} शकटव्यूह,^{१७} तथा सुवर्णव्यूह आदि का निर्माण किया था। इसी व्यूहरचना का ज्ञान द्रोण से अर्जुन तथा अर्जुन से अभिमन्यु को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार आचार्य द्रोण के व्यक्तित्व में विभिन्न प्रकार की विशेषताएं दिखाई देती हैं।

-शोधछात्र, वी.वी.बी.आई.एस्. एण्ड आई.एस्., साधु आश्रम, होशियारपुर (पंजाब)

७. महा. द्रोणपर्व ७/१

८. वही, १२/२२-२३

९. वही, १४/१४

१०. वही, १९२/३७

११. वही, १९०/३४

१२. वही, १३/१८, १९/३८-३९

१३. वही, २०/४-२१

१४. वही, ७/२४

भारतीय समाज एवं संस्कार

माने हैं (मनु. २/१६-२६)। परन्तु व्यास स्मृति में १६ संस्कार माने गये हैं। इस प्रकार संस्कारों की संख्या के विषय में विभिन्नता होते हुए भी इस समय भारतीय समाज में व्यास व्यासस्मृति द्वारा प्रतिपादित सोलह संस्कारों की ही मान्यता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती की 'संस्कारविधि' और पण्डित भीमसेन शर्मा की 'षोडश-संस्कार-विधि' में केवल सोलह संस्कारों का ही समावेश है। भारतीय समाज में इस समय मान्यता प्राप्त षोडश संस्कारों की ही मान्यता है अतः प्रस्तुत लेख में उन्हीं के नाम दिए जा रहे हैं जो निम्नलिखित हैं-

- १) गर्भाधान, २) पुंसवन, ३) सीमन्तोन्नयन, ४) जातकर्म, ५) नामकरण, ६) निष्क्रमण, ७) अन्नप्राशन, ८) चूडाकर्म, ९) कर्णवेध, १०) उपनयन, ११) वेदारम्भ, १२) समावर्तन, १३) विवाह, १४) वानप्रस्थ, १५) संन्यास, १६) अन्त्येष्टि।

ये संस्कार संस्कारविधियों में तथा धर्मशास्त्रों के ग्रन्थों में न्यूनाधिक रूप से उद्धांकित हैं। परन्तु आधुना समाज में इन सभी का प्रचलन नहीं है। इनमें कुछ-एक संस्कार तो ऐसे हैं जिसको विद्वान् वर्ग या कर्मकाण्डी पण्डित अपने घरों में कराते हैं परन्तु उनकी अनिवार्यता समाज में अधुना विद्यमान नहीं। यह भी लिखा जा सकता है कि न तो साधारणजन को संस्कारों के विषय में विद्वान् लोग जानकारी ही देते हैं और न साधारणजन

उस ओर विशेष ध्यान ही देते हैं। अतः भौगोलिक भेद से या देश और समाज के भेद से संस्कारों का सर्वत्र प्रचलन नहीं है। इस में कुछ एक संस्कार ही सम्प्रति जनता में अनिवार्यता लिए हुए हैं; जिनको प्रायः जनसामान्य भी देशभेद से भिन्न रूप में ग्रहण करते हुए भी उनको स्वीकार करता है। यहां कतिपय उन संस्कारों के विषय में लिखा जा रहा है जो प्रायः एकमत से देशभेद से प्रक्रियाभिन्न होने पर भी सामान्य जनता में प्रचलित हैं-

१. नामकरण संस्कार- यह संस्कार चाहे विधिपूर्वक न किया जाय पर प्रायः इसको यत्र-तत्र जनसामान्य में किया जाता है। नाम का प्रभाव जातक पर अवश्य पड़ता है। अतः नामकरण संस्कार बालक के जन्म होने के ग्यारहवें-बारहवें दिन में किया जाता। आजकल तो संस्कार चाहे कोई करे या न करे पर नाम अवश्य रखना पड़ता है। भारत सरकार ने इस ओर सभी को प्रवृत्त किया है। उसको बालक या बालिका के जन्म के बाद तुरन्त पञ्जीकृत किया जाता है। अतः संस्कार चाहे हो या न हो पर नाम रखना अब अनिवार्य है। यही नामकरण संस्कार था जो आज भी पूर्ण रूप में प्रचलित है।

२. निष्क्रमण संस्कार- सुखद वातावरण, सूर्य का समुचित प्रकाश एवं वायु की स्वच्छता आदि की प्राप्ति इस संस्कार का उद्देश्य है। बालक को घर से बाहर निकालने को निष्क्रमण कहते हैं। इसमें बालक को सूर्य का

केवल हिन्दूधर्म के ही नहीं बल्कि अन्य धर्मों एवं सम्प्रदायों के भी अतीव महत्वपूर्ण अंग रहे हैं। इन धार्मिक कृत्यों का आयोजन बच्चे के माता के गर्भ में प्रवेश से लेकर मातृभूमि की मिट्टी में मिलने तक यानि जन्म से पहले तथा मृत्यु के बाद तक करने का विधान किया गया है। ये धार्मिक कर्म ही संस्कार हैं। ये संस्कार बालक तथा बालिका दोनों के लिए समानरूप से कहे गए हैं। प्राचीन काल में यहां तक कि यज्ञोपवीत आदि भी बालक बालिका के समान रूप से होते थे। इन संस्कारों द्वारा मानव की आत्मा की शुद्धि होती है। बालिका के लिए इन संस्कारों की विशेष आवश्यकता है क्योंकि उत्तम संस्कारों से सम्पन्न बालिका बाद में विवाह के बाद अपनी सन्तति को भी संस्कारयुक्त बनाने की क्षमता रखती है। यह निश्चित है कि माँ ही बालक की प्रथम गुरु होती है। वस्तुतः नारी सन्तान की जननी होने के कारण परम वन्दनीय है।

प्राचीन भारतीय समाज में नारी का महनीय स्थान है। उसको पुरुष के तुल्य ही शिक्षा प्राप्त करने के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। वैदिक साहित्य में सर्वत्र उल्लेख मिलता है कि तत्कालीन समाज में नारियों को भी पुरुषों के समान ही शिक्षा-दीक्षा प्रदान की जाती थी। उस समय वह किसी भी रूप में पुरुष से हीन नहीं थी। वह पुरुष की सहयोगिनी होकर

परिवार, समाज और देश की गतिविधियों का संचालन करती थी। पुरुष विद्वानों और ऋषियों से वह किसी भी प्रकार कम नहीं थी। वैदिक साहित्य में अनेक ब्रह्मवादिनी महिलाओं का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद-३/५५/१६ मन्त्र में आयु की प्रथम अवस्था में विद्या प्राप्त करने वाली युवा पुत्रियों का वर्णन है। यज्ञों एवं वैदिक प्रार्थनाओं का सम्पादन करने का अधिकार केवल उसी व्यक्ति को प्राप्त था जिसका उपनयन संस्कार किया गया हो। अतएव यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बालकों की भान्ति बालिकाओं के लिए भी उपनयन संस्कार अनिवार्य था। (ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्) अथर्ववेद-११/५/१९ इससे ज्ञात होता है कि लड़कों के समान लड़कियाँ भी ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का पालन करते हुए ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती थीं। इससे स्पष्ट है कि वैदिक युग में नारी को पुरुषों के समान ही ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने और विद्याप्राप्ति करने की अनुमति दी थी। इसके अतिरिक्त मनु को नारी ने सृष्टिचक्र चलाने के लिए अनिवार्य माना है।

संस्कारों की संख्या एवं वर्गीकरण के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। गौतम धर्मसूत्र (१/८/८) में ४० संस्कार माने गये हैं 'चत्वारिंशत् संस्कारैः संस्कृतः।' महर्षि अङ्गिरा २५ संस्कार मानते हैं। भगवान् मनु ने गर्भाधान से मृत्युपर्यन्त केवल १३ ही संस्कार

भारतीय समाज एवं संस्कार

यह संस्कार ब्रह्मज्ञान प्राप्ति का मूल द्वार कहा गया है। जीवन को व्यवस्थित करने हेतु एवं वेदाध्ययन हेतु इसका महत्त्व अधिक है। कन्याओं का भी उपनयन संस्कार किया जाता था। अथर्ववेद (११/५/१९) का भी आदेश है कि युवतियों को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके अपने योग्य युवा पति को प्राप्त करना चाहिए। (बृहदारण्यकोपनिषद् १/५७) वेदों में नारी के जो कर्तव्य निर्धारित किए गए हैं उनसे स्पष्ट है कि वैदिक कालीन नारी शिक्षित, कलानिपुण एवं ज्ञानी भी थी। वैदिक युग में विद्याध्ययन प्रारम्भ करने के लिए उपनयन संस्कार को अनिवार्य कृत्य माना गया है। आजकल तो जनसामान्य में प्रवृत्ति हो गई है कि बच्चे को ३ वर्ष से भी पहले कहीं छोटे स्कूल में डाल दिया है। संस्कार विशेष नहीं किया जाता है।

७. विवाह संस्कार- विवाह संस्कार गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का संस्कार है। विवाहरूपी बन्धन में वर-वधू को बांधकर दोनों को धर्मानुकूल काम-अर्थ का सेवन तथा धर्मार्जन में प्रवृत्त किया जाता है। पति-पत्नी में

पवित्र प्रेम तथा एकात्मता से ही गृहस्थजीवन की सुख-शान्ति, उत्तम सन्तान की उत्पत्ति होती है और दोनों की आध्यात्मिक उन्नति होती है। यह संस्कार अभी पूर्णरूपेण जीवित है। सभी सम्प्रदायों में अपने-अपने ढंग से इसका आयोजन विस्तार से किया जाता है।

८. अन्त्येष्टि संस्कार- इसमें जीव की सद्गति का विधान है। यह अन्तिम संस्कार है। मृत्यु के पश्चात् यह संस्कार किया जाता है। श्रद्धा के साथ किया गया अन्तिम संस्कार जीव और उसके परिवार के श्रेय के लिए होता है। यह संस्कार की समाज में अपनी-अपनी रीति या मान्यता के आधार पर निश्चित रूप से किया जाता है। प्रक्रिया भिन्न होने पर भी मान्यता वैदिक काल से आज तक स्वीकार्य है।

इस प्रकार हमारे संस्कार हमें देवत्व की उच्चकोटि तक पहुँचाने में समर्थ हैं। शाश्वत शान्ति और समृद्धि के लिए, पुरुषार्थ-चतुष्टय की उपलब्धि के लिए संस्कारों से सुसंस्कारित होना अनिवार्य है। ये सोलह संस्कार ही चित्त की शुद्धि करके मोक्ष तक पहुँचाने में सहायक होते हैं।

-शोधछात्रा, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

दर्शन कराया जाता है। बच्चे के पैदा होते ही उसे सूर्य के प्रकाश में नहीं लाना चाहिए। बच्चे का शरीर जब कुछ पुष्ट हो जाए तब इस संस्कार को करना चाहिए। अब एक प्रथा प्रचलित हो गई है। इसमें भिन्नता तो जरूर देखी गई है पर माताएं बच्चे को धूप में अवश्य निकालती हैं यद्यपि आजकल प्रायः अस्पताल में बच्चे पैदा कराने की प्रथा से कभी भी बच्चे को वहां से बाहर ले आते हैं पर फिर भी यह प्रथा आज भी विद्यमान है।

३. अन्नप्राशन संस्कार- इस संस्कार में बालक को अन्न ग्रहण कराया जाता है। जातक की छः माह की अवस्था सम्पूर्ण होने पर सात्त्विक अन्न अल्प मात्रा में दिया जाता है। अब तक तो शिशु माता का दुग्धपान करके ही वृद्धि को प्राप्त होता था, अब आगे स्वयं अन्न ग्रहण करके ही शरीर को पुष्ट करना होगा क्योंकि प्राकृतिक नियम सबके लिए यही है। यह संस्कार जातक की दैहिक पुष्टि एवं उसके संवर्धन हेतु होता है। किसी न किसी अंश में यह अब भी गृहस्थियों में प्रचलित है कि बच्चे को अच्छे मुहूर्त में कुछ खिलाना है।

४. चूड़ाकर्म संस्कार- यह संस्कार बालक के बल तथा बुद्धि की वृद्धि के लिए होता है। इसका ध्येय स्वच्छता, पवित्रता, सौन्दर्य एवं पुष्टि है। यह संस्कार पहले या तीसरे वर्ष में कर लेना चाहिए। मनुस्मृति (२/३५) के अनुसार द्विजातियों का पहले या तीसरे वर्ष में अथवा

कुलाचार के अनुसार मुण्डन कराना चाहिए। इसमें शिखा का रखना ज्ञानशक्ति की चैतन्यता तथा ज्ञानवृद्धि हेतु माना गया है। क्योंकि शिखा की सुस्थिति बुद्धिचक्र के समीप होती है। शिखा से आयु और तेज की वृद्धि होती है।

५. कर्णवेध संस्कार- जन्म से लेकर पाँचवे-छठे वर्ष के भीतर कभी भी करने का विधान है। वस्तुतः कर्णवेध आयुर्वेद का एक विधान है, कई रोगों के लिए यह निवारक का काम करता है। इसलिए यह बालक तथा बालिका दोनों के लिए है। यह संस्कार कर्णेंद्रिय में श्रवण शक्ति की वृद्धि, कानों में आभूषण धारण करने तथा स्वास्थ्य की रक्षा के लिए किया जाता है। पर्वतीय प्रदेशों में आज भी कर्णवेध होता है। पर संस्कार के रूप में प्रायः नहीं देखा गया।

६. उपनयन संस्कार- उपनयन का अर्थ होता है, गुरु के समीप ले जाना। यह संस्कार व्यक्ति को द्विजन्मा कोटि में परिगणित कराता है। अथर्ववेद के अनुसार आचार्य ब्रह्मचारी का उपनयन करते हुए मानो उसे गर्भ में धारण करता है। तीन रात अपने उदर में रखता है, बाहर आने पर उसे देखने के लिए देवताओं की भीड़ जमा हो जाती है। यह संस्कार आठवें वर्ष में करने का विधान है। इस संस्कार को यज्ञोपवीत-संस्कार भी कहते हैं इसमें गायत्री मंत्र की दीक्षा दी जाती है और यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है।

अर्थात् कोई तो ऐसा होता है कि उसकी क्रिया-विद्या अपने आप में ही सुन्दर होती है। और दूसरा ऐसा होता है कि वह अच्छी तरह सिखाना ही जानता है। किन्तु जिसमें दोनों ही बातें अच्छी हों, वही शिक्षकों में श्रेष्ठ माना जाना चाहिए।

अच्छा शिक्षक ही अच्छे शिष्य का चुनाव कर सकता है, इस विषय में राजा का कथन है कि- पण्डितों का यह कथन है कि यदि गुरु विद्या देने के लिए अधम शिष्य का चुनाव करता है तो यह उसकी बुद्धिहीनता है अथवा गुरु अपनी विद्या देने के लिए निकम्मा शिष्य चुने तो यह उसकी बुद्धिहीनता है।*

अच्छा शिक्षक ही अच्छी शिक्षा दे सकता है, इस विषय में नाटक में नाट्याचार्य गणदास जो कि स्वयं एक शिक्षक है प्रकाश डालते हुए कहता है कि जिस शिक्षक के सिखाने में किसी प्रकार की त्रुटि न हो, उसे ही अच्छी शिक्षा कहते हैं। यथा-

उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः।

४. मालविकाग्निमित्र, १/१६-१७

५. वही, २-९

६. सुशिक्षितोऽपि सर्व उपदेशदर्शनेन निष्णातो भवति। वही, १/१७-१८

७. कृतार्थेदानीं वः शिष्याः। यस्या गुरुजन एव तुष्यति। वही, १/५-६

८. वही, १/६

श्यामायते न युष्मासु यः काञ्चनमिवाग्निषु।^१

अर्थात् जैसे आग में डालने से सोना काला नहीं पड़ता उसी प्रकार जिस शिक्षक के सिखाने में किसी प्रकार की भूल न हो, उसी की शिक्षा अच्छी समझी जाती है।

महाकवि ने शिष्य को शिक्षक की कसौटी कहा है। इस विषय में नाटक में विदूषक कहता है कि- चाहे कोई कितना भी बड़ा पण्डित क्यों न हो, उसकी चतुराई उसके शिष्यों का करतब देखकर ही जानी जाती है।^२ शिष्य की सफलता पर गुरु को अपार हर्ष का अनुभव होता है। मालविका के नाट्यविद्या में निपुण होने पर आचार्य गणदास हर्ष का अनुभव करते हैं।^३

शिक्षक की विद्या भी सार्थक शिष्य के पास पहुँचकर ही विकसित होती है जैसा कि गणदास ने कहा है यथा-

पात्रविशेषे न्यस्तंगुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः।

जलमिव समुद्रशक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य।^४

मालविकाग्निमित्रम् में गुरु-महिमा

—श्री बब्बू राम

न विना ज्ञानविज्ञाने मोक्षस्याधिगमो भवेत् ।

न विना गुरुसम्बन्धं ज्ञानस्याधिगमः स्मृतः ॥^१

प्रस्तुत श्लोक का भाव है कि गुरु के बिना ज्ञान संभव नहीं है और यदि व्यक्ति ज्ञानविज्ञान से युक्त नहीं है तो मोक्ष संभव नहीं है। संस्कृत-साहित्य में गुरु को त्रिदेव की संज्ञा प्रदान की गई है यथा—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।

गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

प्राचीनकाल में गुरु जहां मार्गदर्शक था वहीं वह छात्रों के लिए श्रेष्ठ उपदेशक भी था यथा—

गुरुरेव परब्रह्म गुरुरेव परागतिः ।

गुरुरेव परा विद्या गुरुरेव परायणम् ॥^२

संस्कृत-साहित्य में गुरु के लिए आचार्य, उपाध्याय, शिक्षक इत्यादि शब्द प्रयोग किए

गये हैं। लौकिक संस्कृत-साहित्य में गुरु महिमा के विषय में विशद वर्णन किया है। संस्कृत नाटककारों में महाकवि कालिदास की बहुज्ञता किसी से छिपी नहीं है। महाकवि ने अपने नाटक मालविकाग्निमित्रम् में गुरुमहिमा के विषय में विस्तृत वर्णन किया है।

वास्तविक अध्यापक का लक्षण देते हुए कहा गया है कि जो अध्यापक विद्वान् होने के साथ शिक्षण-कला में भी निपुण हो, वही वास्तविक अध्यापक माना जा सकता है। इस सम्बन्ध में परिव्राजिका (कौशिकी) जो माधवसेन के सचिव सुमति की बहन है, कहती है कि—

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था

सङ्क्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता ।

यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि

प्रतिष्ठापितव्य एव ॥^३

१. महाभारत, शान्तिपर्व, २२

२. मालविकाग्निमित्रम्, १-१६

३. अद्वैताश्वोपनिषद्, ४

==== संस्थान-समाचार ====

अनुदान-

डॉ.ए.वी. कालेज मैनेजिंग कमेटी चित्रगुप्त रोड, नई दिल्ली	५,००,०००/-	डॉ. हरिमित्र शर्मा २६३/२२, हरि नगर, होशियारपुर।	१०,०००/-
दान श्री साहिल गोयल सुपुत्र श्री अशोक कुमार गोयल, पंजाब एंड सिंध बैंक, रेलवे रोड, होशियारपुर।	३०,०००/-	श्रीमती अरुणा सूद वी-१/४९९, निकट गांधी लाईब्रेरी, होशियारपुर।	११००/-
श्रीमती उषा भल्ला ३३, हिमगिरी अपार्टमेंट, आऊटर रिंग रोड, विकासपुरी दिल्ली।	५०००/-	डॉ. श्रवण कुमार रिहानी १६१७, सैक्टर-४४-बी, चण्डीगढ़-१६००४३।	५०००/-
		वार्षिक सदस्यता शुल्क- श्री ओम प्रकाश सूद १०३८/१०, राम गली, निकट बहादुरपुर गेट, होशियारपुर।	५००/-

हवन-यज्ञ-

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ। अक्टूबर 2017 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ भी किया गया।

बधाई- संस्थान के कर्मिष्ठ श्री ओंकारनाथ के सुपुत्र आयुष्मान् हरीशचन्द्र का शुभ विवाह आयुष्मती भावना के साथ २८-९-१७ को बजवाड़ा (होशियारपुर) में बड़ी ही धूमधाम से संपन्न हुआ। इस शुभ कार्य के लिए संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की ओर से सपरिवार श्री ओंकारनाथ को बहुत-बहुत बधाई हो। दोनों बच्चे जीवन में सुखी और संपन्न जीवन व्यतीत करें, यही हम सबकी नये विवाहित युगल के लिए शुभकामनाएं हैं।

मालविकाग्निमित्रम् में गुरु-महिमा

अर्थात् सिखाने वाले (शिक्षक) की कला उत्तम शिष्य के पास पहुंचकर उसी प्रकार खिलती है, जैसे बादल का जल समुद्र की सीप में पहुंचकर मोती बन उठता है।

शिष्य पर तो शिक्षक का ही अधिकार कहा गया है।^१ शिष्य तो गुरु के ही अधीन होता है। गुरु जैसा कहे उसे उसका पालन करना पड़ता है।

शिक्षक के विषय में महाकवि कालिदास से पूर्ववर्ती व परवर्ती महाकवियों ने बहुत विस्तार से कहा है परंतु वर्तमान में शिक्षक की महिमा में गिरावट देखी जा सकती है। वाद-विवाद, शास्त्रार्थ, संघर्ष आदि ही शिक्षण में जीवन के चिह्न हुआ करते हैं। इनसे पलायन करने

वाला विद्वान् अपनी वृत्ति को भूलता है, ऐसा ही वर्तमान में हो रहा है। शिक्षकों का उद्देश्य केवल और केवल पैसा कमाना मात्र है। ऐसे शिक्षकों को महाकवि ज्ञानपण्य वणिक् मानता है। नाटक में आचार्य गणदास कहता है कि-

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तिक्षमाणस्य
परेण निन्दाम्। यस्यागमः केवलजीविकायै
तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।।^२

अर्थात् जो लोग अध्यापक का पद प्राप्त कर लेने पर शास्त्रार्थ करने से भागते हैं, दूसरों की की गई निन्दा को सहन कर लेते हैं, और केवल पेट पालने के लिए विद्या पढ़ाते हैं। ऐसे लोगो पण्डित नहीं वरन् ज्ञान बेचने वाले बनिए हैं।

-शोधछात्र, संस्कृत-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

१. प्रभवत्याचार्यः शिष्यजनस्य मालविकाग्निमित्र, १/१९-२०

२०. वही, १/१७

==== विविध-समाचार ====

विश्वज्योति के अक्तूबर, २०१७ के अंक में दी गई सूचना के अनुसार

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान
के संस्थापक संचालक

पद्मभूषण स्व. आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु जी

की

जयन्ती

के उपलक्ष्य में दिनांक १७ नवम्बर, 201७, शुक्रवार को

वी. वी. आर. आई. साधु आश्रम, होशियारपुर में

श्रद्धाञ्जलि समारोह किया जा रहा है।

मुख्य-वक्ता :

माननीय श्री दिनेश जी

(अखिल भारतीय संगठन मन्त्री, विश्व हिन्दू परिषद)

होंगे।

आपसे इस समारोह में सम्मिलित होने की

प्रार्थना की जाती है।

ॐ कार्यक्रम ॐ

हवन-यज्ञ.....प्रातः 10-00 बजे

श्रद्धांजलियाँ

मुख्य वक्ता का भाषण

==== निवेदक : =====

इन्द्रदत्त उनियाल

आदरी संचालक, वी.वी.आर.आई.

शोक समाचार-

यह लिखते हुए अत्यन्त दुःख हो रहा है कि संस्थान के संचालक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल जी की धर्मपत्नी का लगभग ७५ वर्ष की आयु में होशियारपुर में ५-१०-२०१७ का देहान्त हो गया। आप पिछले कुछ वर्षों से बीमार चल रही थीं। आप एक मिलनसार, दयालु और आगन्तुक का सम्मान और स्वागत करने वाली महिला थीं। रुग्णावस्था में आपके बच्चों ने आपकी भरपूर सेवा की। आपकी इच्छानुसार आपका संस्कार हरिद्वार में दिनांक ७-१०-२०१७ को किया गया। ऐसी स्नेहिल महिला के जाने से उनसे आशीर्वाद लेने वाले सभी को अत्यन्त दुःख है, जिसे मन से निकाला नहीं जा सकता। इस शोक के अवसर पर संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की ओर से संबंधित परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना और सहानुभूति है। परमात्मा से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति दे और परिवार को इस दुःख को सहने की शक्ति दे।

अत्यन्त दुःख से सूचित किया जा रहा है कि संस्थान के पंजाब विश्वविद्यालय पटल से सेवानिवृत्त डिप्टी रजिस्ट्रार श्री सुदर्शन पराशर जी का २१-९-१७ को होशियारपुर में देहान्त हो गया। आप बड़े ही हंसमुख, मिलनसार तथा सामाजिक कार्यों में रुचि रखते थे। आप देश में घटित राजनीतिक घटनाओं पर खुल कर चर्चा और भाग लिया करते थे। आप अपने पीछे भरा-पूरा परिवार छोड़ गये हैं। आपके जाने से संस्थान तथा उनके सहयोगियों को बहुत ही दुःख है। हम सभी की उनके परिवार के प्रति समवेदना तथा सहानुभूति है। हम सब की प्रभु से प्रार्थना है कि वे उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा उनके परिवार को इस दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करें।

संस्थान के कर्मिष्ठ श्री बृजमोहन जी के बड़े भाई श्री कृष्ण मोहन का २०-९-१७ को अचानक होशियारपुर में देहान्त हो गया। आप बिजली विभाग से सेवानिवृत्त होकर अपने बच्चों के साथ सुखी जीवन व्यतीत कर रहे थे। आप मिलनसार और सामाजिक व्यक्ति थे। आप के जाने से सभी को अत्यन्त दुःख हुआ। हम सब की उनके परिवार के प्रति सहानुभूति है। प्रभु से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति दे तथा उनके परिवार को इस दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करें।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्ति:!!!



*Yo Jagar Tam Richah Kamayante Yo Jagar Tamu Samani Yanti
Yo Jagar Tamayam Soma Aha Tavahmasmi Sakhye Nyokah*

RigVeda, 5.44.14

The Rigveda hymns love one who is awake. The Samaveda hymns befriend one who is wakeful. To the one who is vigilant, the worldly happiness says "I am yours, I dwell in your friendship". May we all remain vigilant and shake off laziness. All praise and fame go to the really watchful persons. If a man is on the move, His destiny moves forward with him.

In Memoriam

DEDICATED IN LOVING MEMORY OF PARENTS



Late Mr. Kewal Krishan Sharma
(England U.K.)
06-12-2016



Late Mrs. Satya Sharma
(England U.K.)
25-03-2013

*We cherish their every lasting memory and ideals
in life and feel their presence.
Wherever we are, we pay them our homage and pray for
their eternal bliss and peace.*

FONDLY REMEMBERED BY

Indu & Vijay (Daughter-Son-in-law). Grandchildren- Neeraj (Dohti), Nitin (Dohta)
Ashwin & Nisha (Son- Daughter-in-law). Granddaughter- Aikta, Anagha, Shreya
Rajesh & Shashi (Son-Daughter-in-law). Grandchildren- Sandeep & Ushma (In-law),
Sacchin & Neha (in-law) & Shalini.
Ajay and Latika (Son-Daughter-in law). Grandson- Abhinav

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

गीता २.२०

यह आत्मा किसी काल में भी जन्मता नहीं है और न ही मरता है अथवा न ही यह आत्मा होकर फिर होने वाला है, क्योंकि यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। यह आत्मा शरीर के नाश होने पर भी नष्ट नहीं होता।



स्वर्गीय पिता श्री बी. डी. मनोचा

एवं

स्वर्गीया माता श्रीमती राजरानी जी

की

पुण्यस्मृति

में

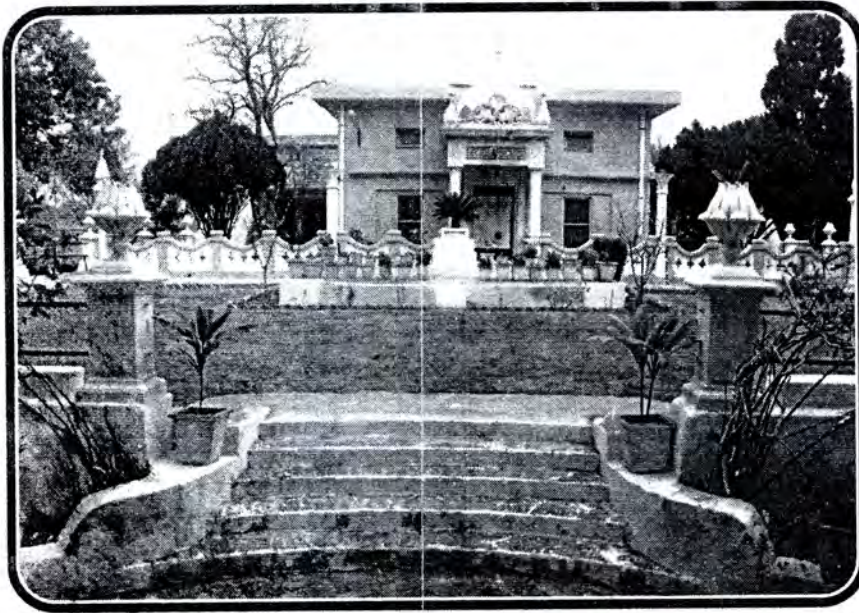
सादर समर्पित

प्रयोजक :

लै. कर्नल वी. बी. मनोचा

साऊथ एक्स्टेंशन पार्ट-II

नई दिल्ली



(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होशियारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होशियारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होशियारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-१०-२०१७ को प्रकाशित ।